श्रेष्ठ बौद्ध कहानियाँ

श्री व्यथितहृदय

सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

मूल्य : पचीस रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
संस्करण : प्रथम, १९८४
संपादन/प्रूफ० : एम० एस० राणा
कलापक्ष : हरिपाल त्यागी
मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

SHRESTHA BAUDDHA KAHANIAN (Short Stories)
by Vyathit Hridai Price : Rs. 25 00

दो शब्द

जीवन और साहित्य में अधिक निकट का सम्बन्ध है। सम्बन्ध ही नहीं बल्कि कहना तो यह चाहिए कि साहित्य के अभाव मे 'जीवन' की सृष्टि हो ही नही सकती। महात्मा टाल्स्टाय ने भी जीवन का आह्वान करते हुए एक स्थान पर लिखा है—जीवन, जिसे हम जीवन कहते हैं, वह एक दूसरी ही चीज है। वह एक सुनहला प्रभात है, जिसमे चिड़ियाँ चहकती हैं, कलियाँ कोप खोलकर सौरभ उड़ाती रहती हैं; भ्रमर गुनगुनाते रहते हैं, और दुनिया? दुनिया नदी की लहरियों की भाँति आगे दौडती हुई जान पडती है। सचमुच प्रकृति का यह प्रगति-इतिहास जीवन है; इसी की लोग पूजा करते है और इसी का निर्माण करने के लिए, मानव-जीवन में साहित्य की सृष्टि भी होती है।

जिस साहित्य में जीवन नही; जिसमें जीवन को ऊँचा उठाने वाले दया, समता, सहानुभूति और अहिंसा के भाव नही, उससे न तो मानव-समाज का कोई उपकार हो सकता है, और न वह कभी साहित्य की खरी कसौटी ही पर कसा जा सकता है। बँगला के एक प्रतिभाशाली लेखक ने अपनी एक पुस्तक मे साहित्य के इस उपयोगी अंश पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—दया, समता, सहानुभूति और अहिंसा के भावों से हीन साहित्य कूड़े मे फेंक देने की वस्तु है। ससार की जो जाति, ऐसे हेय और निकृष्ट साहित्य के निर्माण मे अपना गौरव समझती है, उसकी नसों से कभी मुर्दापन दूर नही हो सकता।

जब मैं साहित्य के इस उपयोगी अंश पर विचार करता हूँ, तब मेरी

आँखों के सामने भारत के अतीत इतिहास का एक पर्दा-सा दौड़ उठता है। मैं उसमे देखता हूँ कि यत्र-तत्र वृक्षों की छाया में बैठकर बौद्ध भिक्षु लोगों को पढ़ा रहे है दया, समता, सहानुभूति और प्रेम का पाठ। कहते हैं, अपराधियों को क्षमा कर दो, शत्रुओं से प्रेम करो, और अत्याचारियों के प्रति सहानुभूति दिखलाओ। बौद्ध भिक्षुओं की यह आवाज, सचमुच कानों मे पड़ते ही, नसों में जीवन की सरिता बहा देती है, आत्मा उससे एक अकथनीय आनन्द का अनुभव करने लगता है। पर दुःख है कि बौद्ध भिक्षु की यह आवाज, बौद्ध-साहित्य का यह विशेष अंग जिसमें जीवन को ऊँचा उठानेवाले भावो की विशेष रूप से प्रचुरता है, अन्धकार के तह मे पड़ा हुआ है। न तो बौद्ध भिक्षुओं की वह जीवनोपयोगी आवाज अब कानों मे पहुँच पाती है और न वह साहित्य ही कभी आँखों के सामने आ पाता है।

मेरी यह पुस्तक, श्रीयुत गणेश पाण्डेय की प्रेरणा का परिणाम है। यदि वह मुझे बौद्ध साहित्य के इस विशेष अंग की ओर आकर्षित न करते तो मैं न तो उसे पढ़ता और न इन थोड़ी कहानियों को लिख ही पाता। उन्ही की कृपा से यह प्रकाशित भी हो पाई। अतएव मैं उनका चिर-कृतज्ञ रहूँगा। चिरकृतज्ञ इसलिए कि इन कहानियों ने मुझे भी कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। मैं समझ गया कि सचमुच दया, समता, सहानुभूति और प्रेम ही संसार में जीवन है। इस जीवन के अभाव मे न तो जीवन-का उत्थान हो सकता है और न मनुष्य वास्तविक सुख ही उपलब्ध कर सकता है। जिसने अपने जीवन मे इसे पा लिया, वह मानो जीवन का बादशाह है। उसे पाने के लिए अब संसार में कोई दूसरी चीज़ शेष ही नहीं रह गई।

कहानियाँ कैसी हैं, अच्छी या बुरी, यह तो मैं नहीं कह सकता; पर यह अवश्य कह सकता हूँ कि हैं सब की सब, अत्यन्त सरल, साधारण और दया, समता के भावो से भरी हुई। यही इनकी एक विशेषता भी हो सकती है। यदि मैं अन्यान्य लेखकों की भाँति, जीवन की इन सच्ची

कहानियों को, कला के नाम पर दुरूहता का जामा पहना देता तो शायद जीवन के साथ मेरा अत्याचार होता और शायद वे मेरे सीधे-सादे पाठकों के सरल हृदय पर अपना अधिक प्रभाव भी न छोड़ पाती। इसीलिए मैंने इन कहानियों को कला के नाम पर दुरूहता से दूर रखने की चेष्टा की है। जहाँ तक हो सका है, मैंने बौद्ध भिक्षुओं के शब्दो मे उनके जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। यदि मेरे इस प्रयत्न और चेष्टा से मेरी ही भाँति, जन-समाज का भी कुछ उपकार हो सका, तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूँगा।

—व्यथित हृदय

क्रम

१

प्रिय वस्तुएँ दुःख का कारण होती हैं

वह एक गृहपति था, था जाति का वैश्य। उसके एक लड़का था। लड़का था उसके प्राणों का दुलारा, उसकी आँखों की पुतली। वह उसी को देखकर जीता था, उसी को देखकर सुख से जीवन के दिन बिताता था। पर दुर्भाग्य! एक दिन लड़का उसकी सुख की दुनिया उजाड़कर इस संसार से चल बसा। गृहपति उसके वियोग में पागल हो गया।

वह एक दिन पर्यटन करता हुआ श्रावस्ती जा पहुँचा। उस समय श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् बुद्ध निवास करते थे। वह भगवान् बुद्ध के पास गया और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

भगवान् ने उसके उदार चेहरे की ओर देखकर कहा—"गृहपति! तेरी इंद्रियाँ कुछ चंचल मालूम पड़ती हैं। क्या इंद्रियों में कुछ विकार उत्पन्न हो गया है?"

"महाराज!" गृहपति ने उत्तर दिया—"मेरी इंद्रियों में विकार क्यों न पैदा हो जाय? क्यों न उनमें चंचलता आ जाय? हाय, मेरा प्यारा, इकलौता बेटा, मेरी सुख की दुनिया उजाड़कर इस संसार से चल बसा। मैं उसी के वियोग में मर रहा हूँ, उसी के शोक में गली-कूचों में भ्रमण कर रहा हूँ।"

"ठीक है गृहपति!" भगवान् बुद्ध ने कहा—"संसार में दुःख, शोक और सब विपत्तियाँ भी अपनी प्यारी वस्तुओं ही से उत्पन्न हुआ करती हैं!"

गृहपति कुछ चौंका, उसे कुछ आश्चर्य हुआ। उसने भगवान्

बुद्ध की ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखकर उत्तर दिया—"ऐसा क्यों महाभाग ! भला कहीं प्रिय वस्तुओं से शोक, दुःख और विपत्ति भी होती है ?"

इसके बाद वह वहां एक क्षण के लिए भी न रुका और बिना बुद्ध भगवान् को प्रणाम किये ही वहां से चल पड़ा। अभी कुछ ही दूर गया होगा, कि उसे जुआरियों का एक अड्डा मिला। कौड़ियां बज रही थीं। जुआरी क्रीड़ा में व्यस्त थे। गृहपति ने वहां पहुंचकर निन्दा के स्वर में कहा—"भला, गौतम को तो देखो ! वह कहते है, संसार में दुःख, शोक और विपत्तियों की उत्पत्ति प्रिय वस्तुओं से हुआ करती है ! मुझे तो उनकी बात तनिक भी नहीं रुची।"

सभी जुआरी एक स्वर में हँसे। सबने ठहाका मारकर उत्तर दिया—"नहीं, गृहपति, तुम ठीक कहते हो। प्यारी वस्तुएँ संसार में सुख और आनन्द के लिए हैं। उनसे दुःख और शोक की कल्पना करना तो निरी मूर्खता है।"

गृहपति खुशी से फूला न समाया। जुआरियों ने उसकी बात का समर्थन किया ! अब क्या चाहिए ? वह अपने को ठीक मार्ग पर समझकर, लगा गौतम के इस विचार के विरुद्ध प्रचार करने। बात ही तो है, उसके फैलते कितनी देर लगती है ! राजा प्रसेनजित् के कानों में उसकी आवाज़ पड़ी।

प्रसेनजित् भी गौतम के इस विचार से आकुल हुआ—घबड़ाया। उसने बुद्ध-पुजारिन मल्लिका देवी को बुलाकर कहा—"मल्लिका ! अपने श्रमण गौतम का उपदेश तो सुनो। उन्होंने एक गृहपति वैश्य से कहा है कि संसार में प्रिय वस्तुएँ ही दुःख का कारण हुआ करती हैं ? क्या यह ठीक है, मल्लिके ! मेरी समझ में तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

मल्लिका कुछ देर तक चुप रही। इसके बाद उसने सिर ऊपर

कर उत्तर दिया—"महाराज ! यदि गौतम भगवान् ने यह कहा है, तो ठीक ही होगा।"

"ठीक ही होगा," प्रसेनजित् ने कर्कश स्वर में कहा—"गौतम जो कुछ कहे, तू उस सबका अनुमोदन ही किया करती है, मल्लिका, यह सब तेरा भ्रम है। तुझे भ्रम के इस रास्ते पर जान-बूझकर भटकते हुए देखकर मेरी आँखें जली जा रही हैं। जा, हट जा यहाँ से।"

मल्लिका प्रसेनजित् की आँखों के सामने से हट गई, पर दुःख का एक भार हृदय पर लादकर। पर क्या वह चुप रहेगी ? नहीं, भगवान् बुद्ध के विरुद्ध वह एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करती ! उसने शीघ्र नालिजंघ नामक ब्राह्मण को बुलाकर कहा—"तुम भगवान् बुद्ध के पास जाओ और उनके चरणों में मल्लिका का सादर प्रणाम करके कहना कि संसार में प्रिय वस्तुएँ दुःख और शोक का कारण कैसे हुआ करती हैं ! देखो भूल न जाना। भगवान् के कहे हुए एक-एक शब्द को हृदय-पट पर अंकित-सा कर लेना।"

नालिजंघ ने बुद्ध के पास जाकर, उन्हें मल्लिका का निवेदन सुना दिया। गौतम ने उत्तर में कहा—"हाँ, ठीक है ब्राह्मण, *संसार में प्रिय वस्तुएँ ही दुःख और शोक का कारण हुआ करती हैं।* इसी श्रावस्ती में कुछ दिन पूर्व एक स्त्री की माता मर गई थी। वह उसके वियोग में इतनी विक्षिप्त बन गई थी कि उसे अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता था। वह फलों से, पत्तों से, वृक्षों से, राह चलते मुसाफिरों से—सबसे यह प्रश्न करती थी कि क्या कहीं तुमने मेरी माँ को देखा है ? ऐसा क्यों ब्राह्मण ? इसलिए कि उसे उसकी माँ बड़ी प्यारी थी। इसी तरह श्रावस्ती की एक स्त्री अपने पीहर गई। उसके भाई-बन्धु उसे उसके पति से छीनकर दूसरे के हवाले करना चाहते थे। किन्तु स्त्री को यह

स्वीकार न था। उसने अपने पति को यह संदेश दिया। उसके पति ने इस विचार से कि स्वर्ग में हम दोनों फिर एकसाथ हो जाएंगे, अपनी स्त्री को मारकर, अपनी भी इहलीला समाप्त कर ली।"

बुद्ध की बातों से नालिजंघ को बड़ा संतोष हुआ। वह उनके चरणों में आदर-अभ्यर्थना प्रकट कर लौट गया और मल्लिका को उनकी शिक्षा का सारांश बता दिया। मल्लिका सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह प्रसेनजित् के पास गई और उनसे कहने लगी :

"महाराज, आज मैं आपको यह बताने आई हूँ कि वास्तव में संसार में प्रिय वस्तुएँ ही दुःख और शोक का कारण हुआ करती हैं।"

प्रसेनजित् सावधान होकर मल्लिका की ओर देखने लगे। मल्लिका ने कहा—"महाराज, आपकी प्रिय पुत्री वज्जिणी आपको प्यारी लगती है न ?"

"क्यों नहीं मल्लिके !" प्रसेनजित् ने उत्तर दिया—"वह तो मेरी आंखों की पुतली है।"

तब मल्लिका ने कहा—"यदि वज्जिणी के जीवन पर विपत्तियों का आक्रमण हो तो क्या आप उससे दुखी न होंगे ?"

"दुखी ही नहीं हूंगा मल्लिके, बल्कि उसे अपने जीवन पर होने वाला आक्रमण समझूंगा।"

इसी भांति मल्लिका ने प्रसेनजित् को अत्यन्त प्रिय लगने वाले सेनापति, प्रजाक्षत्रित्व और राजमहिषी तथा कोशल नगरी के सम्बन्ध में भी प्रश्न किये। प्रसेनजित् ने प्रत्येक बार यही उत्तर दिया, कि इन पर दुःख पड़ने से मुझे दुःख ही नहीं होगा, बल्कि उससे मेरे जीवन का अन्त भी हो सकता है।

मल्लिका मुस्कुराई। उसने राजा के समीप जाकर कहा—"महाराज ! अब तो भगवान् बुद्ध की बात समझ में आ गई न ?"

प्रसेनजित् के ज्ञान-पट जैसे खुल गए। उन्होंने भूल के भार

से दबकर कहा—"मल्लिका ! सचमुच भगवान् बुद्ध जीवन की कसौटी पर खरी उतरने वाली बात ही का सदैव उपदेश दिया करते हैं। आओ, हम-तुम एकसाथ जिधर भगवान् बुद्ध है, उसी ओर मुंह करके उन्हें प्रणाम करें!"

प्रसेनजित् और मल्लिका दोनों घुटने टेककर श्रावस्ती की ओर मुंह करके बैठ गए। दोनों के हाथ जुड़े थे, दोनों की आँखें बन्द थीं, दोनों की इस हार्दिक भक्ति को देखकर यदि भक्ति भी मन ही मन ईर्ष्या करने लगी हो तो आश्चर्य क्या?

२

बुद्ध का प्रभाव

उसका नाम धानंजानी था। जाति की ब्राह्मणी थी, मण्डलकप्प की रहने वाली थी। उसने अपना जीवन बुद्ध भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया था। उसके जीवन का महामन्त्र था, बुद्ध भगवान् की उपासना। इसी महामन्त्र का वह अपने हृदय में जाप किया करती थी। बुद्ध के प्रति उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर उसके सहचारी भी उससे ईर्ष्या किया करते थे।

एक दिन जब प्रभातकालीन सूर्य पूरब से निकल रहा था, धानंजानी ने अपना अंचल आकाश की ओर फैलाकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से कहा—"भगवान् बुद्ध, तुम्हें नमस्कार, तुम्हारे चरणों में सादर अभिवादन!!"

आवाज कुछ ऊँची थी; कुछ जोर की थी। पास ही बैठे हुए

एक ब्राह्मण ने सुन ली। ब्राह्मण भी साधारण नहीं, वेदों का पारखी, शास्त्रों का पूरा विद्वान। नाम था-उसका संगारव माणव। उसने धानंजानी पर क्रोध प्रगट करके कहा—"दुष्ट, यह तू क्या कर रही है? संसार में इतने विद्वान ब्राह्मणों के रहते हुए भी तुम उस मुण्डक संन्यासी की क्यों प्रशंसा कर रही हो?"

"ऐसा न कहो भाई!" धानंजानी ने उत्तर दिया—"शायद अभी तुम बुद्ध भगवान् के गुणों को नहीं जानते। क्या तुमने उनके शील और उनकी दयामयी प्रवृत्ति के जौहर नहीं देखे? वह इस संसार के अद्वितीय पुरुष हैं। उनकी निन्दा भूलकर भी नहीं करनी चाहिए।"

वह ठहरा ज्ञानी ब्राह्मण। इतिहास और व्याकरण का पूरा विद्वान! धानंजानी की बात कैसे उसके गले के नीचे उतरती? उसने धानंजानी को कर्कश स्वर में डाँटकर कहा—"अच्छा, जब वह मुण्डक संन्यासी यहाँ आये, तब मुझे खबर देना। मैं भी उसकी साधुता का जौहर देखना चाहता हूँ।"

उन दिनों भगवान् बुद्ध कोशल में परिभ्रमण कर रहे थे। धानंजानी के भाग्य के सुदिन! अपनी परिभ्रमण-यात्रा में एक दिन मण्डलकप्प में भी आ पहुँचे। धानंजानी को तो मानो आकाश का चाँद मिल गया। उसने संगारव के पास जाकर खबर दी कि बुद्ध भगवान् यहाँ आ गये हैं। ब्राह्मणों के आम्रवन में ठहरे हुए है।

संगारव पहले ही से तैयार था। उसे अपने उद्‌भट ज्ञान पर अभिमान था। वह बुद्ध भगवान् के आगमन का हाल सुनकर उनके पास गया और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

संगारव कुछ देर तक चुप रहा—रहस्य-भरी दृष्टि से बुद्ध की ओर देखता रहा। इसके बाद उसने जिज्ञासु के रूप में कहा—

"गौतम बहुत से श्रमण-ब्राह्मण शुद्ध ब्रह्मचारी होने का दावा पेश करते हैं, क्या आप उनमें है ?"

"हाँ भारद्वाज ! मैं तो उन्ही आदि ब्रह्मचारियों में हूँ । मुझे ज्ञान प्राप्त होने के पहले ऐसा आभास हुआ कि गृह-वास जंजाल है, ससार के विग्रहों का मूल है । मनुष्य सन्यास के सुविस्तृत मैदान ही में जीवन के वास्तविक सुखों को प्राप्त कर सकता है । संन्यास शंख की भाँति उज्ज्वल, मोती जैसा चमकदार और सत्य की भांति सुन्दर है। मैं अपने इसी आभास-आधार पर जवानी ही में अपने माता-पिता को रोता-कलपता छोड़ गृह से अलग हो गया। उस समय मेरे शरीर पर राजसी वस्त्र थे, सिर पर काले-काले घुँघराले वाल थे। पर उन वस्त्रों को छोड़ने और उन बालों को काटने में मुझे तनिक भी ममता नहीं हुई । भारद्वाज ! यह सब संन्यास-प्रवृत्ति की ही तो प्रभुता थी।

"संन्यासी हो मैं शांति और चिरंतन सुख की खोज में संसार में निकला । सौभाग्य से आलार कालाम के पास जा पहुँचा । मैंने उससे कहा—श्रेष्ठ ! मैं धर्म में ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ । बस, रात के तीसरे पहर तम हटा, आलोक उत्पन्न हुआ । ज्ञान की सुनहली किरणों ने, अज्ञानता के काले पर्दे को फाड़कर मेरे हृदय को जगमगा दिया ।"

सगारव बुद्ध भगवान् की बातो को सुनकर चकित-सा हो गया। उसके हृदय पर इन बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह थोड़ी देर तक मन्त्रमुग्ध की तरह बुद्ध की आकृति की ओर देखता ही रह गया। जब उसका ध्यान भंग हुआ, तब उसने कहा—"गौतम! आप धन्य है। मैं भूला हुआ था। मुझ भूले हुए को अब अपनी शरण में लीजिये !"

संगारव ने "मैं भिक्षु सघ के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा प्रकट

करता हूँ" कहकर गौतम के सामने अपना मस्तक झुका दिया। क्यों न हो, सत्य और धर्म की सर्वत्र विजय होती है।

३
राष्ट्रपाल की विरक्ति

कुरुदेश की राजधानी, थुल्लाकीट्ठत के गृहपतियों के कानों में आवाज पड़ी, 'श्रमण गौतम कुछ दिनों तक निवास करने के लिए नगर में आये हुए हैं।' बस फिर क्या था? सबके सब उछल पड़े, आनन्द में मग्न हो गये। दर्शन का ऐसा सुयोग, उपदेश सुनने की ऐसी कल्याणमयी बेला, फिर क्या कभी आयेगी? सब नदी के पानी की भाँति गौतम के पास उमड़ चले और उन्हें आदर से अभिवादन कर उनके चारों ओर बैठ गये।

गौतम के उपदेश की अमृतमयी वाणी सुनते ही गृहपतियों का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। सब ऐसे प्रसन्न हुए मानो स्वर्ग में अपने प्रभु के साथ विहार कर रहे हों। पर उन्हीं में बैठा हुआ था राष्ट्रपाल! उसके हृदय में न प्रसन्नता थी न उदासीनता! वह बड़ी गम्भीरता और तन्मयता से गौतम की बातें सुन रहा था। उसकी आँखें गौतम की तेज-मंडित आकृति पर लगी थीं, और मन लगा था उनके हृदय में छिपी हुई अलभ्य प्रवृत्ति पर। उसकी वह तन्मयता देखकर लगता था, जैसे वह गौतम का कोई पुजारी हो और गौतम के दर्शन कर अपनी आँखों की प्यास बुझा रहा हो।

कुछ देर बाद सब गृहपति चले गये, पर राष्ट्रपाल बैठा ही रह गया। उसकी आँखें गौतम की तेजोमयी आँखों से अमृत-गान करती ही रह गईं। शायद उसे इसका ध्यान तक नहीं रहा। थोड़ी देर के बाद उसकी तन्मयता भंग हुई और उसने गौतम को श्रद्धा सहित प्रणाम करके कहा—"भगवन् ! इस शंख जैसे परमोज्ज्वल आपके ब्रह्मचर्य-स्वरूप ने मुझे चुम्बक की भाँति आपकी ओर आकर्षित कर लिया है। आप मुझे आदेश दें कि मैं भी संन्यास लेकर आप ही के व्रत का अनुगमन करूँ।"

"राष्ट्रपाल !" गौतम ने उत्तर दिया—"सन्यास धर्म की दीक्षा लेने के लिए क्या तुमने अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर ली है ? माता-पिता की आज्ञा के बिना मैं तुम्हें संन्यास धर्म में दीक्षित नहीं कर सकता।"

राष्ट्रपाल निराश-सा हो उठा। उसने माता-पिता से इसकी आज्ञा तो ली नही ! फिर क्या वह सचमुच निराश हो जायेगा ? नहीं, गौतम की अमृतमयी वाणी ने उसके हृदय को जगा दिया है। फिर वह देर क्यों कर रहा है ? राष्ट्रपाल तुरन्त अपने माता-पिता के पास जा पहुँचा।

राष्ट्रपाल ने अपने माता-पिता से संन्यास धर्म की दीक्षा के लिए आज्ञा माँगी। राष्ट्रपाल था अपने माता-पिता का इकलौता बेटा, उनके प्राणों का सहारा, उनकी आँखों की पुतली, वे उसे क्यों आज्ञा देने लगे ! दोनों ने अपने प्यार का हाथ राष्ट्रपाल के सिर पर रखकर कहा—

"बेटा, तुम हमारे बुढापे की लकड़ी हो। तुम्हारे लिए हम दोनों ने अपार कष्ट झेले हैं, हम दोनों सारे संसार को भी छोड़कर तुम्हें नहीं छोड़ सकते !"

राष्ट्रपाल का संन्यास पर प्रेम ! वह कब मानने वाला था। उसने कहा—"मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दो, नहीं तो कँकरीली

भूमि पर लोट-लोटकर प्राण गँवा दूंगा।" वह अपने माता-पिता की आँखों के सामने ही भूमि पर लोटने लगा। उसके माता-पिता उसकी इस विक्षिप्तावस्था को देखकर आकुल हो उठे।

दोनों राष्ट्रपाल के मित्रों के पास गये। मित्रों ने भी राष्ट्रपाल को समझाने का प्रयत्न किया। पर निष्फल! राष्ट्रपाल के हृदय पर किसी की बात का तनिक भी प्रभाव न पड़ा, वह संन्यास धर्म की झाँकी पर अपनी आँखें गड़ाए हुए भूमि पर लोटता ही रहा।

माता-पिता लाचार, मित्र-मण्डली भी विवश! किसी की बात का राष्ट्रपाल के हृदय पर प्रभाव पड़ता ही नहीं। मित्रों ने लाचार होकर राष्ट्रपाल के माता-पिता से कहा—"दे दो इसे सन्यास धर्म में दीक्षा लेने की आज्ञा। इसकी इस मौत से तो इसका सन्यासी रूप में, संसार में जीना ही अच्छा है। उस समय तुम भी कभी-कभी इसे अपनी आँखों से देख सकोगे। यह कभी-कभी तुम्हारे घर आकर तुम्हें दर्शन भी देता रहेगा।"

चारों ओर से निराश माता-पिता क्या करें? सिवाय इसके कोई युक्ति ही नहीं रह गयी। राष्ट्रपाल तो अपना जीवन मिटा देने पर तुला हुआ है। उसे संन्यास धर्म की ममता के सामने कुछ सूझता ही नहीं। माता-पिता ने विवश होकर उसे संन्यास धर्म में दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी।

राष्ट्रपाल के हर्ष की सीमा नहीं! मानो उसके हाथों में किसी ने स्वर्ग का टुकड़ा धर दिया हो। खुशी से ललकता हुआ गौतम के पास गया। गौतम ने उसे संन्यास धर्म की दीक्षा दे दी। वह थोड़े ही दिनों में भिक्षु संघ का एक प्रधान भिक्षु बन गया।

कुछ दिन बीत गये। राष्ट्रपाल की ख्याति चारों ओर फैल गयी। उसने संन्यास ग्रहण करने के पहले अपने माता-पिता को वचन दिया कि कभी-कभी घर आकर तुम लोगों को दर्शन देता

रहूंगा। पर इतने दिनों में वह एक बार भी घर न गया ! राष्ट्र-पाल अब अपने को रोक न सका। वह पात्र और चीवर लेकर थुलकीट्ठल के लिए रवाना हो गया।

राष्ट्रपाल भिक्षावृत्ति के लिए पर्यटन करता हुआ अपने पिता के घर के पास पहुँचा। उस समय राष्ट्रपाल का पिता द्वार पर बैठकर नाई से बाल बनवा रहा था। उसने एक संन्यासी को अपने दरवाजे की ओर आते हुए देखकर कहा—"इन्हीं मुण्डक संन्यासियों ने मेरे एकमात्र इकलौते पुत्र को सन्यासी बना डाला।" राष्ट्रपाल का न वहाँ स्वागत हुआ और न उसे भिक्षा ही मिली। वह भिक्षा-वृत्ति के लिए दूसरे दरवाजे की ओर बढ़ा। पर संयोग कि इसी समय राष्ट्रपाल के पिता के घर से एक दासी सड़ी हुई दाल लेकर निकल आयी। वह दाल गली में फेंक देना चाहती थी। राष्ट्रपाल ने उसे देखकर कहा—"बहन, दाल जमीन पर न फेंक। मेरे इस पात्र में डाल दे।"

दासी ने दाल राष्ट्रपाल के पात्र में डाल दी। पर साथ ही वह संन्यासी की आवाज सुनकर कुछ चौंक पड़ी। उसने संन्यासी की आकृति, उसका शरीर और उसके हाथ-पैर को भी ध्यान से देखा। कई वर्षों की स्मृति जैसे ताजी हो गयी—गृहस्थ राष्ट्रपाल संन्यासी के रूप में उसकी नजरों में नाचने लगा। वह दौड़कर राष्ट्रपाल की माता के पास गयी और कहने लगी—"क्या तू जानती नहीं कि आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये है ?"

"सचमुच !" उसकी माँ उछल पड़ी, उसने कहा—"यदि तुम्हारी बात सच निकली तो आज से तुम्हें दासी-बंधन से मुक्त कर दूँगी।" वह दौड़कर राष्ट्रपाल के पिता के पास गयी। उसने आह्लाद के स्वर में अपने पति से कहा—"गृहपति, क्या तुम्हें खबर नहीं, संन्यासी वेश में राष्ट्रपाल तुम्हारे द्वार पर आया है !"

राष्ट्रपाल का पिता कुछ चौंका, कुछ विस्मित-सा हुआ। 'क्या वही तो राष्ट्रपाल नहीं, जिसको लक्ष्य कर मैंने अपमान-जनक शब्द कहे थे ?' उसका हृदय दुःख से भर गया। वह राष्ट्रपाल की खोज में घर से चल पड़ा।

राष्ट्रपाल कुछ ही दूर पर एक दीवाल के सहारे बैठे हुए मज़े से सड़ी दाल खा रहे थे। राष्ट्रपाल के पिता ने उनके पास पहुँचकर कहा—"बेटा, सड़ी हुई दाल न खाओ। चलो, घर चलो।"

"घर !" राष्ट्रपाल ने उत्तर दिया—"मेरा घर कहाँ ? मैं तो सन्यासी हूँ। मुझे सड़ी और अच्छी दाल, एक-सा स्वाद देती है।"

राष्ट्रपाल के पिता का हृदय दुःख से चकनाचूर-सा हो गया। उसने कहा—"बेटा, कल दोपहर का भोजन मेरे घर करना।"

राष्ट्रपाल चुप रहे। उनके मौनभाव को स्वीकृति समझकर राष्ट्रपाल का पिता घर लौट गया। वह लगा उसी समय साज-बाज रचने। उसने बहुत-सी मणियाँ एकत्र कीं। घर में धन की एक राशि-सी लगा दी। राष्ट्रपाल की स्त्रियों को यह आदेश दिया कि वे समय पर अप्सराओं की भाँति शृंगार करके तैयार रहें। भोजन के सम्बन्ध में क्या कहना ? राष्ट्रपाल के पिता ने आदेश देकर तरह-तरह के पकवान और मिष्टान्न तैयार करवाये।

दूसरे दिन ठीक समय पर राष्ट्रपाल पात्र और चीवर लेकर अपने पिता के घर पहुँचे। आवभगत, आदर-सम्मान की तो कुछ बात ही न पूछिये। राष्ट्रपाल का पिता सम्मानपूर्वक उन्हें अपने मकान अन्तःपुर में ले गया और मणियों की राशि के पास एक आसन पर बिठाकर कहने लगा—"बेटा राष्ट्रपाल, यह केवल तुम्हारी माता की सम्पत्ति है। पिता की सम्पत्ति की तो कुछ बात

ही न पूछो ! जानते हो, इस अतुल धनराशि का उत्तराधिकारी कौन है ? केवल तुम। बेटा, संन्यास धर्म की भिक्षावृत्ति छोड़कर इस धनराशि का उपभोग करो।"

"मैं धनराशि का उपभोग करूँ, गृहपति !" राष्ट्रपाल ने आश्चर्य के स्वर में उत्तर दिया—"मेरी तो सम्मति है कि तुम इस धनराशि को गाड़ियों पर लदवाकर गंगाजी के गर्भ में डलवा दो। इससे तुम्हारी चिन्ता कम हो जायेगी और तुम संसार में सुख और संतोष के साथ जीवन व्यतीत कर सकोगे।"

गृहपति—निराश गृहपति घायल और लाचार सिपाही की भाँति राष्ट्रपाल की ओर देखता रह गया। इसी समय अप्सराओं के वेश में अलंकृत, नाना साज-सज्जिता, राष्ट्रपाल की रमणियाँ हाव-भाव करती हुई उनके सामने आ पहुँची और तरह-तरह से राष्ट्रपाल के मन को डिगाने का प्रयास करने लगीं।

राष्ट्रपाल—संन्यासी राष्ट्रपाल चौंके। उन्होंने अपनी स्त्रियों से बड़े प्रेम से कहा—"बहिनो, यह क्या कर रही हो?" राष्ट्रपाल के मुख से 'बहिनो' शब्द सुनकर स्त्रियाँ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं।

गृहपति अवाक् रहा। राष्ट्रपाल भोजन करके अपने उद्यान में लौट गये। उस समय संन्यासी-वृत्ति मन ही मन प्रसन्न होकर राष्ट्रपाल की इस विजय पर उन्हें बधाई देती हो तो आश्चर्य क्यों ?

४

मखादेव

मिथिला में मखादेव का आम्रवन था। गौतम उसी में निवास कर रहे थे। सध्या का समय था। सूर्य की लाली अन्धकार की चादर से अपना मुँह ढककर सुदूर पश्चिम की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रही थी। गौतम के पास बैठे हुए आनन्द ने देखा, गौतम के शान्त अधरों पर मुस्कुराहट है।

आनन्द विस्मित हो गया—उसके मानस में आश्चर्य की लहरें हलचल मचाने लगी। भगवान् हँसे? संध्या का समय, सूर्य पश्चिम में आहत सिपाही की भाँति अपना दम तोड़ रहा है। नीरव वन, भोजन की चिन्ता में निकली हुई चिड़ियाँ आकुल हो घोंसले की ओर दौड़ी जा रही हैं। हँसने का कोई कारण तो नहीं, किन्तु भगवान् के अधरों पर कभी बेमतलब की मुस्कान में कुछ न कुछ रहस्य तो अवश्य ही है।

आनन्द विनीत भाव से गौतम के चरणों के निकट गया। गौतम ने आनन्द की आकृति पर जिज्ञासा का भाव देखकर कहा—"क्या है आनन्द! क्या कुछ पूछना चाहते हो?"

"हाँ," आनन्द ने उत्तर दिया—"यही कि दिन के अवसान की इस गिरी हुई वेला में भगवान् के अधरों पर मुस्कुराहट क्यों आई?"

आनन्द की बात सुनकर गौतम एक बार फिर मुस्कुराये। इस दूसरी मुस्कुराहट को देखकर आनन्द को यह जानना बाकी न रहा कि भगवान् की मुस्कुराहट में कुछ गहरा तत्त्व अवश्य छिपा हुआ है। वह सच्चे जिज्ञासु की भाँति शान्त होकर गौतम के मुख की ओर ताकता रह गया। क्या उत्तर दे? गौतम की रहस्यमयी

मुस्कुराहट ने तो उसकी जुबान ही बन्द कर दी।

गौतम ने आनन्द की जिज्ञासा को शान्त रूप से उमड़ती हुई देखकर कहा—"आनन्द, जब तुम इस हँसी का कारण जानना ही चाहते हो तो सुनो। गौतम कहने लगे। आनन्द अपने कानों के पट खोलकर पुजारी की भाँति उनके मुँह को देखने लगा।

"आनन्द! मखादेव के इस आम्रवन ने मेरे हृदय में एक स्मृति जगा दी है। मैं इसी स्मृति से हँस पड़ा—मुस्कुरा उठा! मेरी स्मृति की कहानी बड़ी अपूर्व है आनन्द। उससे सहज ही में यह प्रकट हो जाता है कि संसार में कल्याण-मार्ग की भी रक्षा सदैव नहीं हो पाती। यह संसार कितना विलक्षण है, कितना विचित्र है। लो, सुनो मेरी स्मृति की कहानी! शायद तुम भी उसे सुनाकर मेरी ही भाँति संसार की विचित्रता पर मुस्कुरा उठो!

"बहुत दिनों की बात है। इसी मिथिला में मखादेव नाम का एक राजा राज करता था। वह अत्यंत धार्मिक और प्रतापी था। उसके धर्म और प्रताप की प्रभुता चारों ओर फैली हुई थी। वह अपनी प्रजा को इस भाँति प्यारा था, जैसे ईश्वर के पुजारी को उसका ईश्वर।

"एक दिन मखादेव की दृष्टि अपने केशों पर पड़ी। केश सफेद सन की तरह धवल! मखादेव जैसे आकुल-सा हो उठा। वह कुछ देर तक आईने में अपने सफेद केशों को बड़े ध्यान से देखता रहा। न जाने उसके मन में कौनसी भावना जागृत हुई। उसने अपने बड़े लड़के को बुलाकर कहा—'बेटा! मेरे जीवन के देवदूत मुझे बुलाने के लिए आ गए। देखो, मेरे सिर के श्वेत केशों की तरफ। वे उन्हीं में समाविष्ट होकर मुझे यह चेतावनी दे रहे हैं कि अगर तुम अपने इस अन्तिम जीवन को कल्याण मार्ग की खोज में न लगाओगे तो तुम जीवन के वास्तविक सुख को न पा सकोगे। बेटा! मैं संसार में बहुत दिनों तक सुखोपभोग कर चुका

अब तुम राज-कोष की कुंजी और संभालो राज्य का शासन। मैं अपने इन बालों को मुंडा, कापाय वस्त्र धारण कर अब कल्याण मार्ग की खोज में निकलूंगा।

" 'हाँ, एक बात और। देखो, मेरी इस संन्यास-वृत्ति का मेरे ही तक खातमा न हो जाए। मैं चाहता हूँ, मेरे वश में, मेरे कल्याण मार्ग की सदैव बाँसुरी बजती रहे। जब तुम्हारे भी सिर के केश मेरे ही केशों की तरह सफेद हो जाएँ, तब तुम भी ज्येष्ठ पुत्र के हाथो मे राज्य की बागडोर सौंपकर सन्यासी हो जाना। इससे मेरी आत्मा को संतोष होगा—मेरे प्यारे कल्याण मार्ग की मेरे वश के द्वारा रक्षा होगी !'

" मखादेव के हृदय मे, उसके सफेद केशो ने, संसार और जीवन की नश्वरता का एक खाका खींच दिया। वह पूरा विरागी बन गया। संन्यास की भावना उसके हृदय में उथल-पुथल मचाने लगी। उसने उसी समय नाई को बुलाकर अपने सफेद केशों को मुंडा डाला। राजकीय वस्त्र छोडकर, कापाय शरीर पर धारण कर लिया। देखो तो संन्यास-वृत्ति की प्रभुता ! रत्न-महलों का निवासी, मखादेव, एक क्षण में वनवासी हो गया।

" मखादेव के बाद उसके पुत्र-पौत्रों ने भी उसके मार्ग की रक्षा की। निमि का नाम तो तुमने सुना ही होगा आनन्द ! देखो, वह कितना धर्मात्मा था, कितना प्रतापी था ! उसने भी इसी आम्रवन में अपने सफेद केशों को मुंडाकर संन्यास-वृत्ति धारण की थी।"

"किन्तु···!" गौतम रुक गए। कुछ हँसकर, फिर कुछ उदासीन होकर न जाने क्या सोचने लगे।

आनन्द के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने गौतम के दोरंगे चेहरे की ओर देखकर कहा—"किन्तु भगवन् ! इसके आगे आप चुप क्यों हो गये ?"

"चुप मैं इसलिए हो गया आनन्द !" गौतम ने उत्तर दिया—"कि आखिर इस परिवर्तनशील संसार में मखादेव की संन्यास-वृत्ति का सर्वनाश करने वाला उसके वंश में ही पैदा हो गया। उसका नाम था कलारजनक। वह प्रतापी निमि का पुत्र था। उसे राज्यलोभ ने ऐसा अपने शिकंजों में फाँसा कि उसकी आँखें सन्यास के सुनहले मैदान की ओर गईं ही नहीं। उसने संन्यासी न होकर अपने कुल की प्राचीन प्रथा का हमेशा के लिए सर्वनाश ही कर दिया।

"आनन्द, मैंने भी कल्याण मार्ग की खोज की है। मै चाहता हूँ, मेरे बाद भी संसार में इसकी तूती बोलती रहे। देखो, तुम्हीं तक इसकी इतिश्री न हो जाये।"

गौतम अपनी बात समाप्त कर फिर एक बार मुस्कुराये। आनन्द का मस्तक उनकी तीसरी मुस्कुराहट से इस तरह झुक गया, मानो वह उनकी बात का हृदय से अभिनन्दन कर रहा हो।

५
अंगुलिमाल डाकू

प्रसेनजित् के राज में चारों ओर हाहाकार मचा था। नगर उजड़ गए थे, गाँव लुट गये थे, न किसी के मन में शांति और न किसी के मन में संतोष। जिसको देखिए वही भय से समाकुल। बच्चे-जवान-बूढ़े सभी का कलेजा अंगुलिमाल डाकू का नाम सुनते ही पत्ते की भाँति काँप उठता था।

उस समय गौतम श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। गौतम के कानों में भी अंगुलिमाल के अत्याचारों की आवाज पड़ी। बस फिर क्या था, खूंखार सिंह को भी तोते की तरह मीठी बोली बोलना सिखा देने वाले योगी, गौतम पात्र और चीवर लेकर आश्रम से निकल पड़े।

मार्ग में, चरवाहों, किसानों और राहगीरों ने देखा—श्रमण गौतम उसी ओर अकेले बढ़े जा रहे हैं, जहाँ दुर्दान्त अंगुलिमाल निवास करता है।

सबों का कलेजा जैसे ओंठ पर आ गया। एक सूखी हुई हड्डियों का मनुष्य, अकेले, अंगुलिमाल के रास्ते पर! इधर से तो सैकड़ों मनुष्यों के मिले हुए दल को भी जाने की हिम्मत नहीं पड़ती! शायद श्रमण गौतम को डाकू के दुर्दान्त प्रताप की खबर नहीं। सबों ने बारी-बारी से गौतम को टोककर कहा—"न जाओ भाई इस रास्ते से! आगे अंगुलिमाल डाकू का निवासस्थान है। वह बड़े-बड़े शस्त्रधारियों को भी केवल क्षणमात्र में अपने काबू में कर लेता है। उसके सामने जाते हुए बड़े-बड़े सूरमा सिपाही तक काँपा करते है।"

पर गौतम कब मानने लगे? वह बराबर उसी ओर आगे बढ़ते गये।

जंगल के सघन भाग में अंगुलिमाल का स्थान है! कोई वहाँ जाने का नाम भी नहीं लेता। एक दुबले-पतले संन्यासी को अपने स्थान की ओर आते हुए देखकर अंगुलिमाल के विस्मय का ठिकाना न रहा। साथ ही उसके क्रोध की आग भी भड़क उठी—'एक दुबले-पतले, निर्जीव सन्यासी का इतना साहस कि वह अकेला इठलाता हुआ अंगुलिमाल के स्थान की राह से आगे निकल जाय! नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अभी उसे एक क्षण में मारकर भूमि पर गिरा दूंगा!'

अंगुलिमाल धनुष पर तीर चढ़ाकर गौतम के पीछे चल पड़ा। उसे क्या मालूम था कि मेरे इस धनुष-बाण से गौतम के योग अस्त्र कहीं अधिक तीखे है। गौतम ने अंगुलिमाल को धनुष पर बाण चढ़ाये हुए अपने पीछे आते देखा। बस, योग का एक अस्त्र फेंका और अंगुलिमाल की गति रुक गई।

अंगुलिमाल घबड़ाया। उसे विस्मय हुआ—'ओह, यह क्या? मैं इतनी तेजी के साथ दौड़ने पर भी उस संन्यासी तक क्यों नहीं पहुँच रहा हूँ? आज मुझे क्या हो गया है? मैं तो तेज दौड़ने वाले हाथियों को भी क्षणमात्र में अपना शिकार बनाता था?'

अंगुलिमाल अपनी शक्ति का हरएक तरह से प्रयोग करके लाचार हो गया। अब उससे न रहा गया। उसने गौतम को पुकारकर कहा—"संन्यासी, खड़ा रह।"

"मैं तो खड़ा हूँ अंगुलिमाल!" गौतम ने उत्तर दिया—"और तू चल रहा है। फिर तू मुझ तक क्यों नहीं पहुँच रहा है? कैसे आश्चर्य की बात है!"

अंगुलिमाल चौंका, उसे विस्मय हुआ—'संन्यासी तो झूठ नहीं बोलते! मगर यह झूठ बोल रहा है। आगे दौड़ा जा रहा है और कहता है, मैं तो खड़ा हूँ।' अंगुलिमाल ने विस्मय के स्वर में कहा—"संन्यासी, तू झूठ बोल रहा है। तू तो आगे भागा जा रहा है और फिर कहता है मैं खड़ा हूँ!"

"हाँ, मैं खड़ा हूँ अंगुलिमाल!" गौतम ने उत्तर दिया—"तुम्हारी आँखें हिंसा, लोभ, पाप और असत्य की भावनाओं से भरी हुई है। इसीलिए तुम्हें सच्ची बात भी झूठी मालूम होती है।"

गौतम की इस बात का डाकू के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने धनुष-बाण नाले में फेंक दिया और वह उनके चरणों की वन्दना करके कहने लगा—"भगवन्! मैं आपकी शरण में हूँ। मेरा उद्धार कीजिए।"

गौतम ने उसके सिर पर अपनी कृपा का हाथ रखकर उसे भिक्षु बना लिया। इधर गौतम अंगुलिमाल को भिक्षु-रूप में लेकर श्रावस्ती लौटे और उधर प्रसेनजित् के राज-निवासियों ने राजधानी मे एकत्रित होकर यह कोलाहल मचाया कि अंगुलिमाल डाकू के उद्दण्ड अत्याचार से प्रजा मरी जा रही है। अनेक नगर बर्बाद हो गये है। सैकडो गाँव लूट लिये गये हैं। करोड़ों मनुष्यों को तलवार के घाट उतार दिया गया। अब हम लोग कहाँ जाएँ, किसकी शरण ढूँढें ? उसने अपने राक्षसी काण्डों से चारों ओर कुहराम मचा दिया है।

प्रजा की यह पुकार सुनकर प्रसेनजित् के कोप की सीमा न रही। वह पाँच सौ घुड़सवारों के साथ अंगुलिमाल के दमन के लिए निकल पड़ा। इस समय भिक्षु-रूप अंगुलिमाल के साथ गौतम श्रावती के जेतवन में ठहरे हुए थे। प्रसेनजित् ने उसी बगीचे में पहुँचकर डेरा डाला।

गौतम ने प्रसेनजित् को पाँच सौ घुडसवारों के साथ यात्रा के लिए निकला हुआ देखकर कहा—"राजन् ! आप इस वेश में कहाँ जा रहे हैं ? किसी प्रचण्ड शत्रु ने राजा की सीमा पर आक्रमण तो नहीं किया है ?"

"नही भगवन् !" प्रसेनजित् ने उत्तर दिया—"किसी शत्रु ने आक्रमण नही किया है, बल्कि अंगुलिमाल नामक एक डाकू के अत्याचारों से इस समय राज में चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। इस समय उसी का सर्वनाश करने के लिए अपने घर से निकला हुआ हूँ।"

गौतम मुस्कुराये। कुछ देर तक चुप रहे, फिर बोल उठे—"राजन् ! यदि अंगुलिमाल आपके सामने बौद्ध भिक्षु के रूप में उपस्थित हो तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ?"

"मैं उस समय उसकी पूजा करूँगा भगवन् !" प्रसेनजित् ने

उत्तर दिया—"मैं उसे घर पर सप्रेम निमंत्रित कर भोजन कराऊँगा। मगर यह विश्वास नहीं होता कि अंगुलिमाल ऐसा दुर्दान्त और हिंसक मनुष्य भी कभी बौद्ध भिक्षु हो सकता है।"

"संसार में कोई काम असम्भव नही राजन्!" गौतम ने कहा—"भिक्षु-वेश में बैठा हुआ नया श्रमण अंगुलिमाल ही है।"

राजा के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने भिक्षु के पास जाकर कहा—"महाभाग! क्या तुम्हीं अंगुलिमाल हो?"

"हाँ राजन्!" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैं ही डाकू अंगुलिमाल हूँ।"

राजा प्रसेनजित् श्रद्धापूर्वक अंगुलिमाल की परिक्रमा कर राजधानी लौट गया।

कुछ ही दिन बीत पाये थे। एक दिन अंगुलिमाल पात्र और चीवर लेकर भिक्षा-वृत्ति के लिए श्रावस्ती में गया। वह नगर में घूम रहा था, सहसा एक कंकड़ आकर उसके सिर में लगा। सिर फट गया, रक्त की धारा-सी बह चली। अभी उस चोट को अंगुलिमाल सँभाल भी न पाया था कि दूसरी ओर से एक पत्थर का टुकड़ा सनसनाता हुआ आया और उसके सिर में एक और घाव हो गया। अंगुलिमाल लहू से सन गया। उसके सारे कपड़े रक्त से लाल हो गये। जिसने उसे इस वेश में देखा, उसी ने कहा—"आह, बड़ी चोट लगी!" पर अंगुलिमाल के मुख से आह और कराह का एक शब्द भी न निकला।

रक्त में सना अंगुलिमाल हाथ में टूटा हुआ पात्र लेकर गौतम के पास पहुँचा। गौतम ने उसे देखकर कहा—"भिक्षु! आज तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा हुआ।"

"प्रायश्चित्त पूरा हुआ!" गौतम के मुख से यह शब्द सुनकर अंगुलिमाल ऐसा प्रफुल्लित हुआ मानो उसके हाथों में किसी ने मुक्ति की माला रख दी हो!

६

वैर का जवाब प्रेम से दो

उसका नाम मोलिय फग्गुण था। वह बौद्ध भिक्षु था, पर था भिक्षुणियों का प्रेमी। वह दिन-रात संघ में रहने वाली भिक्षुणियों के साथ रहा करता और उनसे अनेक प्रकार का आलाप-प्रलाप किया करता। यदि उससे कोई किसी भिक्षुणी की शिकायत करता तो वह उसे डाँट देता—फटकार देता। इतना ही नहीं, उसे अपशब्द कहके उस पर संघ की अदालत में अभियोग भी चला देता। संघ में रहने वाले समस्त भिक्षु उसके इस व्यवहार से ऊब उठे।

उस समय गौतम श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। मोलिय फग्गुण के व्यवहार से दुखी एक भिक्षु गौतम के पास गया और उनके चरणों में प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

गौतम ने भिक्षु को दुखी और उदास देखकर कहा—"क्या है भिक्षु? क्या संघ की व्यवस्था बिगड़ गई है? अथवा किसी ने उसके नियमों को तोड़कर तुम्हारे जी को दुखाने का प्रयत्न किया है?"

भिक्षु चुप रहा। उसकी आँखें सजल हो आईं। उसने थोड़ी देर के बाद हृदय की सारी वेदना स्वरों में एकत्रित करके उत्तर दिया—"भगवन्! संघ के प्रबंधक मोलिय फग्गुण की व्यवस्था बिगड़ गई है। वह संघ में रहने वाली भिक्षुणियों से अधिक संसर्ग रखता, बात-बात में लोगों को गालियाँ भी दिया करता है। लोग उसके इस व्यवहार से ऊब गये हैं—आकुल हो उठे हैं।"

गौतम देर तक सोचते रहे—मन ही मन विचार करते रहे। फिर उन्होंने भिक्षु की ओर देखकर उत्तर दिया—"भिक्षु! जाओ, मोलिय फग्गुण को मेरे पास भेज दो।"

कुछ देर के बाद फग्गुण आया और गौतम को प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। गौतम ने पहले रहस्यमयी दृष्टि से उसकी आकृति की ओर देखा। फिर थोड़ी देर तक चुप रहकर उन्होंने कहा—"फग्गुण! तुम संन्यासी हो न? तुमने सांसारिकता छोड़कर उससे विरक्ति धारण कर ली है न?"

"हाँ भगवन्! मैं संन्यासी हूँ।" फग्गुण ने उत्तर दिया—"मैंने संसार से विरक्ति धारण कर ली है।"

"तो तुम भिक्षुणियों से अधिक संसर्ग क्यों रखते हो फग्गुण?" गौतम ने कहा—"साधारण से साधारण बात पर क्यों क्रोध प्रकट किया करते हो? भिक्षुणियों की शिकायत पर क्यों दूसरों के साथ लड़ाई करने के लिए तैयार हो जाया करते हो? इन सब बातों का तुम्हारे पास क्या जवाब है फग्गुण! क्या ये सब बातें संन्यासी जीवन को कलंकित नहीं करतीं?"

फग्गुण चुप रहा। अपराधी की भाँति गौतम के मुँह की ओर देखता रह गया। इसके सिवाय वह कर ही क्या सकता था? उत्तर तो उसके पास कुछ था नहीं। गौतम ने फग्गुण को अपराधी की भाँति मस्तक नत किये हुए देखकर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, और फिर लगे अमृतमयी वाणी में उसे उपदेश देने :

"फग्गुण, दया करना सीखो, प्रेम करना सीखो। क्रोध को अपने चित्त से हटा दो। किसी को भूलकर भी कभी कोई कड़वी बात न कहो। यदि कभी तुम्हारी आँखों के सामने कोई भिक्षुणियों को घसीटे, उन्हें यंत्रणा दे, तो भी तुम्हें क्रोध न करना चाहिए। कोई तुम्हें चोट पहुँचाए तो उसका जवाब प्रेम से देना सीखो, नफरत और क्रोध से नहीं।"

फग्गुण ने गौतम की बातों का अभिनन्दन करके श्रद्धा से मस्तक झुका लिया। स्नेह और भक्ति आँखों में उमड़ पड़ी। प्रेम के सजीव आँसू आँखों से गिरने लगे। गौतम ने स्नेह से

फग्गुण की आँखों के आँसू पोंछकर फिर कहना शुरू किया—"फग्गुण, चित्त को शुद्ध रखो। क्रोध की जड़ को हृदय के भीतर से उखाड़कर फेंक दो। साधुता का बाह्य स्वरूप अच्छा नहीं होता। उसकी एक न एक दिन कलई खुल जाती है। सुनो, एक कहानी कहता हूँ—

"अतीतकाल में इसी श्रावस्ती नगरी में एक वैश्य गृहपति निवास करता था। उसकी स्त्री का नाम वैदेहिका था। वह गृह-कार्य में बड़ी पटु थी। देखने में भी अत्यन्त रूपवती थी। उसकी कीर्ति अड़ोस-पड़ोस में, चारों ओर फैली हुई थी।

"वैदेहिका की एक दासी थी। दासी का नाम काली था। अपनी स्वामिनी की कीर्ति चारों ओर फैली हुई देखकर काली के मन में यह विचार पैदा हुआ कि मेरी स्वामिनी का लोग क्यों गुणगान करते हैं? क्या सचमुच वह पूज्या है? क्या सचमुच वह दयामती है? क्या सचमुच उसके हृदय में क्रोध नहीं? क्या वह सचमुच असाधारण अपराधियों को भी क्षमा करना जानती है?

"काली ने अपनी स्वामिनी की परीक्षा लेनी शुरू की। दासी तो थी ही! सोचा, यदि काम-काज में देर करूँगी तो वह अवश्य ही मुझ पर कुपित होगी। बस, वह दूसरे दिन देर से काम पर आयी।

"खिझी हुई वैदेहिका काली को सामने देखकर उबल पड़ी। कहने लगी—'क्यों रे दुष्टा, तू अब तक कहाँ थी? क्यों नहीं सवेरे काम करने आयी? जानती नहीं, देर होने से गृहपति को कष्ट होता है।'

"काली का निशाना सीधा लगा था! उसका तो यह मतलब ही था! वह तो यह जानना ही चाहती थी कि स्वामिनी वास्तव में दयालु है या केवल ऊपर ही से दया का स्वांग करती

है। अब वह नियमित रूप से काम पर देर से आने लगी।

"रोज ही डाँट-फटकार! रोज ही भद्दी गालियाँ!! वैदेहिका जलती-भुनती, काली को अनेक तरह की फटकार सुनाती। पर काली को उससे एक तरह का आनन्द मिलता। क्रोध की इसी मंजिल पर वह वैदेहिका को नहीं छोड़ना चाहती थी। वह तो देखना चाहती थी वैदेहिका के चरम क्रोध का अभिनय। आखिर एक दिन उसकी मनोकामना पूरी हुई— उसकी आँखों को वैदेहिका के चंडी रूप का दर्शन हुआ।

"काली देर से काम पर आती ही थी! उधर स्वामिनी का कोप भी भयकर रूप धारण कर रहा था। निदान, एक दिन काली जब काम करने आयी, तब वैदेहिका हाथ में झाड़ू लेकर उस पर टूट पड़ी और लगी उसकी पीठ और सिर पर प्रहार करने। काली का शरीर रक्त से लाल हो गया, सिर फट गया। वह चिल्लाती हुई बाहर दौड़ गयी और लोगों को पुकारकर कहने लगी—'देखो भाई, देखो, मेरी स्वामिनी वैदेहिका ने मेरा सिर फोड़ डाला।'

"काली की पुकार पर अड़ोस-पड़ोस के स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। रक्त में सनी हुई काली! जिसने उसको देखा, उसी के मुख से निकल पड़ा—'वैदेहिका! तुमने यह क्या किया? तुम तो साधु वेश में राक्षसिनी-सी प्रतीत हो रही हो!'

"बस, उसी दिन से वैदेहिका की कीर्ति-कौमुदी अस्त हो गयी। वह अब जन-मंडली के बीच में दयामयी के स्थान में वज्रहृदया कही जाने लगी। भिक्षु! वैदेहिका की भाँति ऊपर से साधुपन का स्वाँग न करो। आत्मा की शुद्धता ही शरीर का वास्तविक सौन्दर्य है। तुम इसी का अनुसरण करो, इसी को अपने जीवन-जाप का महामंत्र बना लो।"

भिक्षु फग्गुण के हृदय की कालिमा जैसे धुल गयी। उसके

मुख-मण्डल पर एक तेजोमयी आभा-सी छिटक पड़ी। उसने गौतम के चरणों में प्रेम से प्रणाम करके उत्तर दिया—"अब ऐसा ही होगा भगवन् !"

'अब ऐसा ही होगा भगवन् !'—फग्गुण के स्वर में कितनी दृढ़ता थी, कितनी भक्ति थी !! शायद इससे योगी गौतम की आत्मा को भी कुछ संतोष प्राप्त हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

७

त्यागी कुम्हार

कोशल देश की सुन्दर नगरी में भगवान् गौतम नगर के मध्यमार्ग से भिक्षुओं के साथ चारिका के लिए परिभ्रमण कर रहे थे। सहसा वह एक स्थान पर रुक गये। जैसे कुछ सोचने लगे—जैसे किसी स्मृति ने उनके मानस में कुछ हलचल-सी मचा दी हो, भिक्षु सन्नाटे में आ गये। सोचने लगे—भगवान् सहसा रुक क्यों गये। किस स्मृति की जंजीर ने सहसा उनके पैरों को जकड़ लिया ? आनन्द ने आगे बढ़कर नम्रतापूर्ण स्वर में कहा—"क्यों खड़े हो गये भगवन् ! क्या, चारिका के लिए अब आगे न बढ़ेंगे ?"

"नहीं आनन्द," गौतम ने उत्तर दिया—"यहीं आसन बिछाओ। इस स्थान के अन्तराल में सोई हुई कश्यप भगवान् की स्मृति ने मेरे हृदय में हलचल मचा दी है। मैं आज यहीं बैठकर योगी कश्यप की स्मृति में साधना के मंत्र जपूंगा—भिक्षुओं को उनकी गाथा सुनाऊँगा।"

कहने की देर थी। आसन बिछ गया। भिक्षु गौतम के आसन के सामने बैठकर उनके मुख की ओर देखने लगे। गौतम कुछ देर तक आँखें बन्द कर कुछ सोचते रहे। मानो गौतम की स्मृति के दिव्य लोक में आनन्दपूर्वक विहार कर रहे हों! कुछ देर के बाद साधना भंग हुई। उन्होंने प्रेम से भिक्षुओं की ओर देखकर कहना शुरू किया :

"न जाने कितने दिन बीत गये आनन्द! इसी स्थान के आस-पास बहुजनाकीर्ण वेहलिंग नामक एक कस्बा स्थित था। उसमें घटिकार नाम का एक कुम्हार रहता था। उसके माता-पिता अन्धे थे। वह दिन-रात अपने माता-पिता की सेवा में लगा रहता था। त्यागी तो वह इतना था कि दीन-दुखियों को अपना सब कुछ समर्पण कर देने में भी उसे तनिक हिचकिचाहट नहीं होती थी!

"वह ब्रह्मचारी था, था शान्ति की मूर्ति। किसी को कष्ट देना तो जानता भी नहीं था। दयालु तो इतना था कि भूमि को भी कभी शस्त्र से नहीं खोदता था। खुद न खाता, पर भोजन की सामग्री भटकते हुए कुक्कुर, बिल्लियों को बाँट देता। वह मनुष्य रूप में देवता था आनंद! उसकी एक-एक सेवा में महान् देवत्व भरा हुआ था।

"घटिकार का एक मित्र था। उसका नाम था जोतिपाल। दोनों में बड़ी मैत्री थी। एक दिन घटिकार के कानों में [illegible] पड़ी, श्रवण कश्यप वेहलिंग के समीप ही एक वाटिका में [illegible] कर रहे हैं। घटिकार ठहरा त्यागी कुम्हार, साधु-[illegible] जान से पसंद करने वाला; कश्यप का नाम सुनते ही [illegible] की श्रद्धा-भक्ति उबल पड़ी। उसने अपने मित्र [illegible] कहा—'जोतिपाल! योगी कश्यप पास ही [illegible] कर रहे हैं। चलो, उनका दर्शन कर आयें।'

" 'जाने भी दो घटिकार !' जोतिपाल ने उत्तर दिया—'मुण्डक संन्यासी के दर्शन करने से होता क्या है ?'

" मगर घटिकार कब मानने लगा ! उसके हृदय में भी अपार श्रद्धा और भक्ति ! वह नदी में स्नान करने के बहाने जोतिपाल को योगी कश्यप के पास ले ही गया। दोनों कश्यप को आदर सहित प्रणाम करके एक ओर बैठ गये। कश्यप ने दोनों की ओर दृष्टिपात करके कहा—'क्या है भाई, कहाँ चले ?'

" 'महाराज !' जोतिपाल ने उत्तर दिया—'मेरा मित्र घटिकार आपका उपदेश सुनना चाहता है।'

" कश्यप ने घटिकार की ओर आँख उठाई। उसकी आँखों के कोने-कोने में श्रद्धा और भक्ति नाच रही थी। योगी कश्यप ने पल मात्र में ही घटिकार के त्यागी जीवन का रहस्य जान लिया। उन्हें भी घटिकार को देखकर प्रसन्नता हुई। उनकी आत्मा को भी चिर सुख प्राप्त हुआ। उन्होंने दोनों को उपदेश दिया।

"जोतिपाल कश्यप के उपदेश से ऐसा प्रभावित हुआ कि सांसारिक ममता को लात मारकर संन्यासी बन गया।

" 'आश्चर्य है घटिकार ?' जोतिपाल ने कश्यप के पास से लौटकर मार्ग में कहा—'योगी कश्यप के उपदेशों को सुनकर भी तुम अब तक संन्यासी न हुए ? क्या तुम्हारे हृदय पर उनके उपदेशों का कुछ भी प्रभाव नही पड़ा ?'

" 'ऐसी बात नहो जोतिपाल !' घटिकार ने उत्तर दिया—'कश्यप की अमृतमयी वाणी ने मेरे हृदय पर काफी प्रभाव डाला है पर मेरे लिए तो अंधे माता-पिता की सेवा ही संन्यास है। मैं अपनी उसी संन्यास-वृत्ति में प्रसन्न रहता हूं—आह्लादित रहता हूँ।'

" जोतिपाल चुप हो गया। वह वहाँ से लौटकर पुनः योगी

कश्यप के पास गया और उनके साथ वाराणसी चला गया। श्रमण कश्यप, भिक्षा-वृत्ति ही उनके जीवन का अवलम्ब। वाराणसी में इधर-उधर परिभ्रमण करते हुए ऋषिपतन के मृगदाव में पहुंचे। वहीं उन्होंने अपना डेरा डाला। वह वहीं एक वृक्ष के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

"उस समय वाराणसी में किकि नाम का एक धार्मिक राजा राज्य करता था। उसके कानों में यह खबर पड़ी कि योगी कश्यप इस समय ऋषिपतन के मृगदाव में निवास कर रहे हैं। बस फिर क्या था, वह तुरन्त कश्यप के पास चल पड़ा।

"वहाँ पहुँचने पर किकि कश्यप को सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। कश्यप ने उससे पूछा—'कहिए राजन्, आज किसलिए यहाँ तक कष्ट किया?'

"'महाराज को कल भोजन के लिए निमंत्रित करने आया था।' किकि ने उत्तर दिया।

"कश्यप मौन रहे।

"किकि उनके मौन को स्वीकृति समझकर घर लौट गया। दूसरे दिन उसने लाल धान का भात तथा अनेक तरह के व्यंजन बनवाये। ठीक समय पर कश्यप पात्र और चीवर लेकर काशिराज किकि के मकान पर जा पहुँचे। किकि ने उनका सप्रेम स्वागत किया, उन्हें श्रद्धापूर्वक आसन पर बैठाया।

"कश्यप भोजन करने लगे। किकि भी आसन लेकर एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक मौन रहने के बाद किकि ने कश्यप से निवेदन किया—'भगवन्! यदि एक वर्ष तक आप वाराणसी ही में निवास करें तो बहुत अच्छा हो। इससे मुझे आपके भिक्षु-संघ की सेवा करने का सुयोग प्राप्त होगा।'

"'नहीं राजन्! मैं ऐसा नहीं कर सकता।' कश्यप ने उत्तर दिया—'मैं भिक्षा-वृत्ति करने वाला संन्यासी! मुझे एक साल

तक एक स्थान पर ठहरने से क्या काम ?'

"किकि ने कई बार आग्रह किया। पर कश्यप बार-बार उसके आग्रह को टालते गये। इससे किकि के हृदय में कुछ खीझ-सी पैदा हो गयी। उसने दुखी, उदासीन और कुछ चंचल होकर कहा—'भगवन्! क्या मुझसे भी बढ़कर संसार में आपका कोई सेवक है?'

"'हाँ राजन्!' कश्यप ने उत्तर दिया—'आपसे भी बढ़कर मेरा एक प्रिय सेवक है। वह बेहलिंग गाँव का रहने वाला है। उसका नाम घटिकार है, वह जाति का कुम्हार है।'

"जाति का कुम्हार और मुझसे बढ़कर हो, किकि के मन में एक ईर्ष्या-सी जागृत हो उठी। कश्यप ने उनके मन का भाव ताड़कर कहा—'राजन्! आश्चर्य करने की बात नहीं। घटिकार सचमुच एक असाधारण पुरुष है। उसके हृदय के कोने-कोने में त्याग की भावना भरी हुई है। वह दीन, दुखियों और गरीबों की सेवा में प्रतिक्षण अपने को लुटाने के लिए तैयार रहता है। सुनिये उसके त्याग की कहानी।

"'कुछ दिन हुए, मैं उस समय बेहलिंग गाँव के समीपस्थ एक उपवन में निवास करता था। बरसात का समय था। भीषण वर्षा के प्रकोप से मेरी गंध-कुटी चूने लगी। मैंने भिक्षुओं को आदेश दिया—जाओ, घटिकार की झोंपड़ी को उजाड़ डालो। राजन्! उस समय घटिकार ने अपनी झोंपड़ी बिल्कुल नयी-नयी तैयार की थी।

"'घटिकार अपनी झोंपड़ी से कहीं बाहर चला गया था। उसके अन्धे माता-पिता झोंपड़ी में सुख से सोये थे। भिक्षुओं ने पहुँचकर उसकी घास-फूस की झोंपड़ी उजाड़नी शुरू कर दी। अन्धों ने आवाज लगाई—कौन? भिक्षुओं ने उत्तर दिया—कश्यप की गंध-कुटी चू रही है।

"'अन्धों ने पुनः प्रसन्नता से ललककर कहा—ले जाओ, भाई, ले जाओ। गंध-कुटी के चूने से योगिराज को कष्ट होता होगा।

"'घटिकार जब घर लौटा, तब उसे यह हाल मालूम हुआ। वह सुनकर ऐसा प्रसन्न हुआ, मानो उसके हाथों में किसी ने निर्वाण के फल धर दिए हों। घटिकार का यह त्याग क्या बड़ा नहीं है राजन् ?'

"'सचमुच भगवन् !' किकि ने उत्तर दिया—'घटिकार बहुत बड़ा पुरुष है। यदि हम उसे सांसारिक न कहकर देवी कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।'

"राजा ने प्रसन्न होकर घटिकार के पास गाड़ियों पर लदवा-कर अतुल संपत्ति भेजी और उससे यह सप्रेम निवेदन किया कि तुम मेरे इस उपहार को खुशी से स्वीकार करो, पर घटिकार ने उत्तर में यह प्रार्थना की कि राजन ! मुझे यह न चाहिए। इसकी शोभा तो आपके राजकोष ही में होगी।

"घटिकार के इस त्याग से, उसकी त्याग-वृत्ति क्या और अधिक ऊँची न हो गई होगी ! आनन्द ! धन्य है घटिकार और धन्य है कश्यप। दोनों इस समय संसार में नहीं हैं, पर चारों ओर से यही आवाज आ रही थी आनन्द, कि धन्य है घटिकार और धन्य है कश्यप !"

८
भोगों के कुफल

शाक्य देश का मेतलूप नामक कस्बा था। उन दिनों गौतम अनेक भिक्षुओं के साथ उसी कस्बे में निवास करते थे। कस्बे से तीन योजन दूर नगरक नाम का एक नगर था। राजा प्रसेनजित् किसी कारण से नगर में डेरा डालकर पड़ा हुआ था।

एक दिन प्रसेनजित् को वन में विहार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपने मंत्री दीर्घकारायण को बुलाकर कहा—"मंत्री, मेरी इच्छा वन में परिभ्रमण करने की है। जाओ, सुन्दर यानों को तैयार होने की आज्ञा दे दो। और स्वयं भी मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओ।"

रथ जुत गये। प्रसेनजित् मंत्री के साथ रथ पर बैठकर परिभ्रमण के लिए चल पड़ा।

वन का मध्यम भाग। बीच में एक सुन्दर वाटिका-सी बनी थी। राजा ने रथ से उतरकर वाटिका में प्रवेश किया। शान्त और निर्जन स्थान! पक्षी का रव तक नहीं होता था, वृक्ष का पत्ता तक नहीं खटकता था। राजा को गौतम भगवान् की स्मृति हो आई। उसने मंत्री से कहा—"कैसा शांत और नीरव स्थान है, दीर्घकारायण! मानो स्वयं शांति ही ने इस स्थान की रचना की हो। यह मनोरम और शांतिप्रद स्थान वैसा ही है कारायण, जहाँ मैं गौतम भगवान् के पास बैठकर उनसे धर्म-उपदेश सुना करता था। न जाने भगवान् इस समय कहाँ निवास करते हैं कारायण! क्या तुम उनके संबंध में कुछ जानते हो?"

"हाँ, जानता हूँ राजन्!" कारायण ने उत्तर दिया—"भगवान् इस समय शाक्यों के मेतलूप नामक कस्बे में निवास करते हैं।"

"वह कस्बा यहाँ से कितनी दूर है, कारायण !" राजा ने पूछा। "केवल तीन योजन।" कारायण ने उत्तर दिया—"हम लोग वहाँ थोड़ी ही देर में बड़े आराम से पहुँच सकते हैं।"

राजा ने रथों को तैयार होने की आज्ञा दे दी। रथ जुत गये। राजा मंत्री के साथ रथ पर बैठकर मेतलूप की ओर चल पड़ा।

संध्या का समय। मेतलूप की सुन्दर वाटिका। शान्ति मानो वृक्षों की डालियों पर झूला डालकर झूल रही थी। सौम्य मूर्तिधारी भिक्षुक वाटिका में इधर से उधर टहल रहे थे। राजा कारायण को अपनी तलवार और पगड़ी देकर, वाटिका में, जहाँ गौतम की गंध-कुटी थी, चला गया। कारायण वाटिका के द्वार ही पर राजा की प्रतीक्षा में रुका रहा।

गंध-कुटी का द्वार बंद था। राजा ने नम्रता से आवाज लगाई—"भगवन् !"

"कौन? प्रसेनजित् !" गौतम ने स्वर पहचानकर उत्तर दिया—कुटी का द्वार खुला। राजा गौतम को प्रणाम कर कुटी में एक ओर बैठ गया।

गौतम के कुछ पूछने के पहले ही प्रसेनजित् बोल उठा—"भगवन् ! मेरा चित्त आज संदेह के झूले पर झूल रहा है। ससार में मुझे कहीं शांति नजर नही आती। चारों ओर एक हलचल, एक तूफान। इस आश्रम को छोड़कर कहीं कोई शुद्ध ब्रह्मचारी नजर ही नही आता।

"चारों ओर विवाद और कलह की एक आग-सी जल रही है। राजा राजाओं से लड़ रहे है, क्षत्रिय क्षत्रियों से। माता पुत्र का गला घोंट रही है, पुत्र माता-पिता के गले पर छुरी चला रहा है। भाई भाई के साथ विश्वासघात कर रहा है, मित्र मित्र के गले को कपट के फंदे में फँसा रहा है। कहीं प्रेम नहीं। कहीं विश्वास नही ! संसार का सारा प्रेम और सारा विश्वास तो जैसे

भगवान् की इस गंध-कुटी में एकत्रित हो गया हो।

"ससार में रोगों का भी बाहुल्य है। मैं इधर से उधर विचरता हूँ, संसार में चारों ओर परिभ्रमण करता हूँ, कोई मुझे मृतप्राय दिखाई देता है तो कोई सूखी हड्डियों का ढांचा मात्र। मैं उन्हें देखकर अपने मन में कल्पना करता हूँ कि इन्होंने अपने को तप की अग्नि में अवश्य ही तपा डाला होगा। पर जब उनसे पूछता हूँ कि भाई! तुम दुबले-पतले क्यों हो, तब वह उत्तर देते हैं—शरीर में चिर दिनों से भयंकर रोग है। किन्तु इसके प्रतिकूल यहाँ सभी भिक्षु मोटे, ताजे और हृष्ट-पुष्ट हैं। जिसको देखता हूँ उसी की आकृति पर मनोहर कांति, जिसको देखता हूँ उसी की आँखों में दैवी तेज!

"मैं राजा हूँ। मेरा पृथ्वी के अधिकतर भाग पर शासन है। अनेक मनुष्यों के भाग्य का निपटारा मेरे हाथों में है। मैं चाहे जिसको दण्ड दूँ, चाहे जिसको पुरस्कृत करूँ। किन्तु इस महान शक्ति के हाथ में रहते हुए भी मेरा शासन इतना संयमशील नहीं, जितना भगवान् का। मैं जब राजदरबार में दरबारियों के बीच कुछ कहने लगता हूँ तब कुछ न कुछ अशांति उत्पन्न हो ही जाती है। मगर जब भगवान् भिक्षुओं को उपदेश देने लगते हैं तब किसी के मुँह से आवाज भी नहीं निकलती। सब के सब ऐसे मौन हो जाते हैं, मानो पत्थर की मूर्तियों की कोई जमात बैठी हो। मैंने स्वयं अपनी आँखों से एक दिन देखा भगवन्! जब आप धर्मोपदेश कर रहे थे, तब एक भिक्षु को खांसने की आवश्यकता प्रतीत हुई, पर पास के एक दूसरे भिक्षु ने उसके घुटने को दबाकर चुप रहने के लिए ऐसा सकेत किया कि बेचारे की खाँसी भीतर ही भीतर गायब-सी हो गई।"

राजा अपनी बात खतम कर गौतम के मुँह की ओर देखने लगा। गौतम ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर कहा—"बस, कह

चुके राजन् ! तुम्हारी इन सब बातों का मैं क्या उत्तर दूं ? संसार के प्राणी भोग ही से नाना प्रकार के कष्ट सह रहे हैं। भोग से ही लोग दुखी हैं, भोग ही से लोगों में अशान्ति है। हमारे इस आश्रम में सांसारिक भोग की लीला नहीं है राजन्, इसलिए तुम्हें यहाँ मनोरम शान्ति, शुभ्र प्रेम और अखण्ड ब्रह्मचर्य के दर्शन हो रहे हैं।"

गौतम के इस छोटे-से उत्तर से प्रसेनजित् का हृदय गद्‌गद हो गया। वह भगवान् की सौम्य मूर्ति अपने हृदय-मंदिर में स्थापित कर पुनः मंत्री के साथ डेरे की ओर लौट गया। पर यदि उसका मन गौतम भगवान् के चरणों ही के पास रह गया हो तो आश्चर्य क्या ?

९

सेल ब्राह्मण

वह जाति का ब्राह्मण था। उसका नाम था, केणिय जटिल। उसके दिन तपश्चर्या ही में व्यतीत होते। त्यागी और सेवा-वृत्ति-धारी भी था। किसी दीन, दुखी और रोगी की खबर पाता, तो फौरन काम-काज छोड़कर उसके पास पहुँच जाता। उसकी सेवा करता, उसका दुख-दर्द पूछता, उसे मरहम-पट्टी लगाता, उसकी दवा-दारू करता और उसकी आत्मा को संतोष देकर फिर अपने घर लौट आता।

यदि सुन लेता कि कहीं कोई यति आये हैं, कहीं किसी संन्यासी

का आगमन हुआ है, तो उत्साह से उनके पास चला जाता। उन्हें अपने घर पर निमंत्रित करता, उनकी पूजा-अभ्यर्थना करता। उसकी सात्विक आत्मा को इसी में सुख मिलता था—इसी में आनन्द प्राप्त होता था।

एक दिन केणिय के कानों में यह समाचार पड़ा—श्रमण गौतम साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ परिभ्रमण करते हुए आपण नामक कस्बे में आये हुए हैं। श्रद्धा और भक्ति का पुतला केणिय ब्राह्मण ! गौतम का नाम सुनकर हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। अहोभाग्य ! गौतम ऐसा संन्यासी पास ही आपण कस्बे में ! फिर न जाने दर्शन का कब सुयोग मिले। ऐसा सुयोग तो बार-बार मिलता नहीं ! ब्राह्मण गौतम के दर्शन करने के लिए घर से चल पड़ा।

श्रद्धा की मूर्ति केणिय ! गौतम के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। गौतम ने उसे उपदेश दिया—धर्म की सुन्दर गाथाएँ सुनाईं। वह जैसे अपने को भूल-सा गया। मानो वह संदेह किसी दूसरे लोक में विहार करने लगा। उसकी वह प्रसन्नता, उसका वह चिर आनन्द क्या बताने की चीज है ?

उपदेश सुनने के बाद केणिय ने श्रद्धा से गौतम के चरणों में निवेदन किया—"भगवन् ! कल का भोजन आप मेरे यहाँ स्वीकार करें।"

गौतम को कुछ आश्चर्य हुआ। एक गरीब और साधु जीवन-सेवी ब्राह्मण ! साढ़े बारह सौ भिक्षुओं को कैसे भोजन करा सकेगा ? गौतम ने विस्मय के स्वर में उत्तर दिया—"केणिय ! तू कष्ट न कर। मेरे साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु भी तो है।"

"आप अकेले नही भगवन्, साढ़े बारह सौ भिक्षुओं सहित मेरे यहाँ भोजन करे !" त्यागी और संन्यासी-भक्त ब्राह्मण केणिय कब मानने लगा ! आखिर उसने बार-बार आग्रह करके गौतम

को भोजन करने के लिए राजी कर ही लिया। गौतम भी उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर बार-बार 'ना' नहीं कह सके। योगी ही ठहरे! दूसरों की श्रद्धा और भक्ति को कैसे निराश कर सकते थे!

केणिय ने घर लौटकर अपने अड़ोसियों-पड़ोसियों को बुलाकर कहा—"भाइयो! मैंने श्रमण गौतम को भोजन करने के लिए कल निमंत्रित किया है। उनके साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु भी हैं। इसलिए इस सेवा-कार्य में तुम सब लोग मिलकर मेरी सहायता करो। सेवा का ऐसा सुयोग जीवन में बार-बार नही आता। न जाने हम लोगों के किस पुण्य के प्रताप से यह अवसर उपस्थित हुआ है।"

केणिय की बात सबके कानों में गूंज पड़ी। सबने अक्षर-अक्षर का जैसे हृदय से अभिनन्दन किया। सब उसी समय काम में जुट गये। कोई चूल्हा खोदने लगा, कोई लकड़ी फाड़ने लगा, कोई बर्तन साफ करने लगा, कोई पत्तल तैयार करने लगा। किसी ने सामान की व्यवस्था अपने हाथों में ली, कोई पानी के प्रबन्ध में लग गया। कोई आसन तैयार करने लगा, कोई मण्डप सजाने लगा। केणिय के द्वार पर जैसे काम का एक समुद्र-सा उमड़ पड़ा।

सेल! केणिय का मित्र, वेदों का पारदर्शी विद्वान् ब्राह्मण! दोनों में खूब पटती थी, दोनों एक-दूसरे को जी-जान से चाहते थे। सेल वेदों ही का ज्ञाता नही था, उसकी सामुद्रिक शास्त्र में भी खासी पहुँच थी। वह किसी पुरुष को देखते ही यह जान लेता था कि इसमें क्या विशेषताएँ और क्या दोष हैं? लोग उसकी प्रतिष्ठा भी करते थे, उसकी आदर से अर्चना भी करते थे। वह आपण नामक कस्बे में तीन सौ विद्यार्थियों को वेदों की शिक्षा देता था।

संयोग की बात, सेल भी उस दिन अपने तीन सौ विद्यार्थियों

के साथ केणिय के यहाँ जा पहुँचा। केणिय के द्वार पर विशाल आयोजन का समुद्र उमड़ा था! कोई चूल्हा बना रहा है, कोई लकड़ी फाड़ रहा है। सेल को आश्चर्य हुआ। उसने केणिय से पूछा—"मित्र केणिय, आज राजा बिंबिसार को निमंत्रित किया है क्या?"

"नहीं मित्र, सेल!" केणिय ने उत्तर दिया—"न तो मेरे यहाँ किसी का विवाहोत्सव है, और न मैंने राजा बिंबिसार ही को निमंत्रित किया है। कल मेरे यहाँ महायज्ञ होगा सेल। मैंने सम्यक्-संबुद्ध गौतम को, उनके बारह सौ भिक्षुओं सहित भोजन के लिए निमन्त्रित किया है!"

"सम्यक्-संबुद्ध!" सेल ने विस्मय के स्वर में कहा—"ऐसा न कहो केणिय! सम्यक्-संबुद्ध तो ब्राह्मणों को छोड़कर कोई होता ही नहीं। पर ऐसे ब्राह्मण भी जगत् में बहुत कम दिखाई देते हैं!"

"मैं ठीक कहता हूँ सेल!" केणिय ने उत्तर दिया—"श्रमण गौतम संबुद्ध ही है! उन जैसा महापुरुष इस समय शायद ही दुनिया में कोई दूसरा हो। ऐसे महापुरुषों के दर्शन बड़े भाग्य से हुआ करते है सेल! अगर तुम्हें मेरी बातों का विश्वास न हो तो जाकर स्वयं गौतम के दर्शन कर आओ!"

मित्र केणिय के मुख से गौतम की प्रशंसा सुनकर सेल को आश्चर्य हुआ। क्या सचमुच गौतम सम्यक्-संबुद्ध हैं? केणिय तो कभी झूठ बोलता नहीं! उसकी उनमें इतनी भक्ति, ऐसी श्रद्धा! सेल उसी समय अपने विद्यार्थियों के साथ गौतम के दर्शन के लिए चल पड़ा। पर चल पड़ा साथ ही उनके महापुरुषत्व की परीक्षा करने के लिए भी! उनके शरीर में, महापुरुषों के बत्तीस लक्षण देखने के लिए।

सेल अपने विद्यार्थियों के साथ गौतम के पास गया और उन्हें

प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। योगी गौतम से ब्राह्मण सेल के मन की बातें छिपी न रही। पर वह चुप रहे। उधर सेल उनके शरीर में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण देखने लगा। तीस लक्षण उसे साफ-साफ़ दिखाई पड़ गये। पर वह शेष दो, जिह्वा-गुह्य इंद्रिय के लक्षणों को न देख सका। गौतम उसकी विवशता पर मुस्कुराये। उन्होंने योग शक्ति से उन दोनो लक्षणों को भी उसे दिखा दिया।

पर अब भी सेल का मस्तक गौतम के सामने न झुका। अब भी उसे यह विश्वास न हुआ कि गौतम सम्यक्-सबुद्ध है। उसने वृद्ध ब्राह्मण आचार्यों के मुख से सुना था, जो सम्यक्-संबुद्ध होते है, वह प्रशंसा करने पर स्वयं भी अपने गुणों की सराहना करने लगते हैं। सेल ने, दूसरी बार अपनी इसी कसौटी को गौतम के सामने रक्खा।

सेल ने गौतम की प्रशंसा करते हुए कहा—"गौतम! आप वीर्यवान हैं, आप कान्तिवान् है! आप सर्वशक्तिमान् है, आप प्रतापी है! आप महापुरुष हैं, आप संसार के अनोखे रत्न है! बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा आपके अनुयायी है, आपका पद धर्मराज से भी बढ़कर उच्च है!"

"हाँ, मेरा पद धर्मराज के पद से भी कहीं अधिक उच्च है, ब्राह्मण!" गौतम ने उत्तर दिया—"मै स्वयं सभी धर्मों का राजा हूँ। मैंने धर्म के सभी तत्वों को समझ लिया है। तुम मेरे सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह न करो। मै सचमुच सम्यक्-सबुद्ध ही हूँ। ऐसे संबुद्ध दुनिया में बहुत कम हुआ करते है।"

वेदों का पारंगत विद्वान् ब्राह्मण सेल! उसके हृदय का संदेह दूर हो गया। उसका मस्तक अपने आप गौतम के सामने झुक गया। उसने हाथ जोड़कर गौतम से निवेदन किया—"क्षमा कीजिये, भगवन्! क्षमा कीजिये। मुझे मेरे तीन सौ विद्यार्थियों

के साथ अपनी शरण में ले लीजिये।"

गौतम ने सेल की प्रार्थना स्वीकार कर उसे उसके तीन सौ विद्यार्थियों सहित संन्यासी बना लिया। दूसरे दिन गौतम जब केणिय के यहाँ भोजन करने गये, तब उनके साथ साढे बारह सौ भिक्षु की जगह, साढ़े पन्द्रह सौ भिक्षु थे। योगी गौतम की कृपा! भोजन की सामग्री पूरी उतर गई। क्यों न हो, गौतम का प्रभाव ही तो है! केणिय तो उस प्रभाव को देखकर ऐसा आनन्द-विस्मृत हुआ, मानो उसे किसी ने ब्रह्मानंद का उन्मादक रस पिला दिया हो!

१०
प्रसेनजित् और गौतम

कोशल के ऋजुका प्रांत में स्थित राजा प्रसेनजित् ने अपने चर को बुलाकर कहा—"दूत! भगवान् गौतम के पास जाओ। उनके चरणों में मेरी ओर से हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहना—भगवन्! आज भोजन के पश्चात् राजा प्रसेनजित् आपकी सेवा में उपस्थित होंगे।"

दूत ने मस्तक झुकाकर राजा की आज्ञा शीश पर ली। वह राजा को अभिवादन कर गौतम के पास चला गया। उसी समय राजा की दोनों रानियाँ उनके पास आ पहुँचीं। उनमें एक का नाम सोमा और दूसरी का सुकुला था। दोनों गौतम की पुजारिन थीं। दोनों ने सविनीत हाथ जोड़कर राजा से कहा—'महाराज!

अभी आपने दूत भेजकर भगवान् के पास यह संदेशा भेजा है कि मैं भोजन के उपरांत उनकी सेवा में उपस्थित हूँगा। तो क्या महाराज, भगवान् गौतम के पास जाकर आप हम दोनों बहनों का भी अभिवादन उन्हें कह सुनायेंगे?'

रानियों की बात सुनकर राजा मुस्कुराया और फिर चुप हो गया। रानियाँ मौन को स्वीकृति समझकर वहाँ से चली गयी।

राजा भोजन करने के पश्चात् गौतम के पास जा पहुँचा और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

राजा ने पुनः दूसरी बार गौतम के चरणों में मस्तक झुकाकर कहा—"भगवन्! सोमा और सुकुला, दोनों बहनों ने आपके चरणों में श्रद्धा से अभिवादन कहा है।"

गौतम राजा की ओर देखकर हँसे और कहने लगे—"राजन्, सोमा और सुकुला, दोनों बहनों को क्या आप ही दूत मिल सके हैं! अच्छा, मेरी ओर से भी उन्हे मेरे आशीर्वाद का सन्देश कह दीजियेगा।"

राजा कुछ देर तक चुप रहा। गौतम की व्यंग्य-हँसी का आनन्द मन ही मन लूटता रहा। इसके बाद उसने कहा—"भगवन्! मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम कहते है कि ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ हो और जो सर्वदर्शी हो! क्या यह सच है भगवन्! कहीं इस तरह का ढिंढोरा पीटने वालों का उद्देश्य आपको कलंकित करना तो नही है?"

"हाँ, यही बात है राजन्!" गौतम ने उत्तर दिया—"मैंने यह बात कभी नहीं कही और न कभी ऐसा कह ही सकता हूँ। जो लोग मेरे सम्बन्ध में इस तरह की झूठी बातों का प्रचार किया करते है, उनका उद्देश्य सचमुच मुझे कलंकित ही करना है...।"

गौतम की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि प्रसेनजित् ने अपने सेनापति विड्डूभ को बुलाकर कहा—"सेनापति ! आज राजान्त पुर में किसने यह बात कही थी कि श्रमण गौतम कहते हैं कि ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं जो सर्वज्ञ हो, जो सर्वदर्शी हो ?"

"संजय ब्राह्मण ने राजन् !"-सेनापति ने उत्तर दिया।

राजा ने सेनापति को आज्ञा दी—"किसी आदमी को भेजकर शीघ्र संजय ब्राह्मण को मेरे पास आदर से बुलाओ।"

सेनापति आदेश-पालन के लिए चला गया। राजा ने अपनी बात का सिलसिला बदलकर कहा—"भगवन् ! ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों में कोई भेद है या नहीं ?"

"मैं तो भेद नहीं मानता राजन् !" गौतम ने उत्तर दिया—"क्योंकि मनुष्य मात्र की सृष्टि करने वाले तेज और वीर्य की शक्तियों में विभेद नहीं हुआ करता।"

प्रसेनजित् को गौतम की इस बात से सन्तोष हुआ। उसने फिर अब अपना दूसरा प्रश्न गौतम के सामने इन शब्दों में पेश किया—"भगवन्, क्या देवता मनुष्य लोक में आते हैं ?"

"आते भी हैं, और नहीं भी आते राजन् !" गौतम ने उत्तर दिया—"जो देवता लोभी होते हैं, वे तो मनुष्य लोक में आते हैं और जो लोभी नहीं होते वे नहीं आते।"

इसी समय प्रसेनजित् के पास एक आदमी ने आकर कहा—"महाराज ! संजय ब्राह्मण, जिसे आपने बुलाया था, वह आ गया।"

"आने दो।" कहकर प्रसेनजित् गौतम के मुँह की ओर देखने लगा।

सजय आया और हाथ जोड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया। राजा ने उससे पूछा—"संजय ! राजान्त-पुर में आज क्या

तुमने ही यह बात कही थी कि श्रमण गौतम कहते हैं कि कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो सर्वज्ञ हो, जो सर्वदर्शी हो ?"

"नहीं महाराज !" संजय ने उत्तर दिया—"मैंने यह बात नहीं कही थी। यह बात तो मैंने सेनापति विड्डूभ के मुख से सुनी थी।"

प्रसेनजित् ने सेनापति की ओर आँख उठाकर कहा—"क्या संजय ठीक कह रहा है, सेनापति ! क्या तुमने ही भगवान् के सम्बन्ध में यह बात उठाई थी ? अगर हाँ, तो फिर तुमने उसको छिपाने का प्रयत्न क्यों किया सेनापति ! अपना दोष दूसरों के सिर पर मढ़ते हुए तुम्हें कुछ हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई ?"

सेनापति चुप रहा। मानो वह मौन रूप में अपना अपराध स्वीकार कर रहा हो। सेनापति को विशेष लज्जित देखकर गौतम ने राजा की ओर दृष्टिपात करके कहा—"जाने भी दो राजन ! यह बात चाहे जिसने कही हो ! अब उससे मतलब क्या ? राजाओं का तो क्षमा ही भूषण है। उन्हें प्रत्येक प्राणी पर दया करनी चाहिए। तुम भी दया और क्षमा को विशेष रूप से अपने हृदय में स्थान दो राजन् ।"

प्रसेनजित् का मस्तक अपने आप गौतम के सामने श्रद्धा से झुक गया। क्यों न हो ! गौतम श्रद्धा और भक्ति के साक्षात देवता थे न ! फिर प्रसेनजित् क्यों न उसका पुजारी बने ? क्यों न वह उनकी अर्चना करे ? ऐसी पूजा और अर्चनाओं ही से तो वह संसार-भर में धार्मिक राजा कहलाता था।

११

अभिमानी साधु का पुत्र

वह वैशाली का रहने वाला था। उसका नाम था सत्यक! वह एक नंगे साधु का पुत्र था। उसका बाप अभिमानी और बड़ा आग्रही था। उसकी प्रतिष्ठा चारों ओर थी। ऐसे अभिमानी और प्रतिष्ठित पिता का पुत्र था सत्यक! फिर वह क्यों न अभिमानी बने, क्यों न प्रतिष्ठा का लोलुप हो।

वैशाली के विद्वानों की विशाल सभा! सत्यक दर्प-भरे स्वर में सभा के मध्य में कहा करता था—"ऐसा कोई श्रमण, ब्राह्मण या आचार्य नहीं, जो मेरे साथ विवाद कर सके! मेरे साथ विवाद करने में जिसके शरीर से पसीने की धारा न बह चले! यदि मैं किसी अचेत प्राणी से शास्त्रार्थ करूं, तो वह मेरी ओजस्विनी वाणी से प्रकम्पित हो जाय! चेतन प्राणी की तो कोई बात ही नही!"

संयोग की बात! एक दिन सत्यक की आयुष्मान् अश्वजित से भेंट हो गयी। वह पात्र और चीवर लेकर वैशाली में भिक्षा-वृत्ति के लिए गये थे। सत्यक ने अश्वजित से कुशल-संवाद पूछ-कर कहा—"अश्वजित! श्रमण गौतम अपने शिष्यों को किस प्रकार की शिक्षा दिया करते हैं?"

"वह अपने भिक्षुओं से कहते हैं, सत्यक!" अश्वजित ने उत्तर दिया—"रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है।"

"अच्छा यह बात है अश्वजित!" सत्यक ने विस्मय के स्वर में उत्तर दिया—"तब तो मैं श्रमण गौतम से मिलकर उन्हें अवश्य परास्त करूँगा, उन्हें अवश्य इस झूठे मत-प्रचार का मजा चखाऊंगा!"

अश्वजित चुप रहा। सत्यक प्रजातंत्र भवन में एकत्रित पाँच सौ लिच्छवियों के पास जाकर कहने लगा—"चलो भाइयो मेरे साथ, श्रमण गौतम के पास चलो। मेरा-उनका विवाद होगा—शास्त्रार्थ होगा। जिस भाँति बलवान पुरुष लोमवाली भेड़ के बालों को पकड़कर उसे नचाता घुमाता है, उसी प्रकार आज मैं शास्त्रार्थ में गौतम को नचाऊँगा। जिस प्रकार बलवान हाथी सरोवर में घुसकर पानी को उछालता है, उसी प्रकार मैं वाद में गौतम को उछालूँगा।"

सत्यक की बात सुनकर लोगों के मुख से तरह-तरह की बातें निकलने लगी। किसी ने कहा—"गौतम सत्यक से क्या विवाद करेगा? सत्यक सचमुच गौतम को विवाद में पछाड़ देगा।" किसी ने कहा—"नहीं, यह बात नहीं, गौतम संबुद्ध है, सर्वदर्शी हैं। सत्यक उनसे विवाद करने की कौन कहे, उनके सामने इस उद्देश्य से एक क्षण ठहर भी नहीं सकता।"

कुछ भी हो, सत्यक का अभिमान आसमान पर नाचने लगा। भगवान् गौतम से मुकाबला करने के लिए उसका एक-एक क्षण प्रलय के समान व्यतीत होने लगा। वह पाँच सौ लिच्छवियों की सहानुभूति प्राप्त कर उनके साथ श्रमण गौतम के आश्रम की ओर चल पड़ा।

उस समय गौतम महावन की कूटागारशाला में निवास करते थे। सत्यक ने पाँच सौ लिच्छवियों के साथ वहाँ पहुँचकर एक भिक्षु से पूछा—"श्रमण गौतम कहाँ है भिक्षु! मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ।"

भिक्षु ने महावन के एक वृक्ष की ओर संकेत कर दिया। वृक्ष क्या था, मानो शांति का उद्गम-स्थान! पत्ते-पत्ते में शांति, शाखा-शाखा में शांति! मानो शांति ही ने उस वृक्ष की छाया में निवास करने के लिए उसकी रचना की हो। गौतम उसी

साम्राज्य में एक आसन पर बैठे हुए थे।

सत्यक ने अपने पाँच सौ साथियों के साथ वहाँ पहुँचकर गौतम को सस्नेह प्रणाम किया। गौतम ने सबको बैठने का आदेश देकर कहा—"क्यों चले भाई? तुम लोगों पर कोई मुसीबत आयी है क्या?"

"नहीं महाराज!"—सत्यक ने आगे बढ़कर उत्तर दिया—"न कोई मुसीबत आयी है, और न किसी दैवी आपदा ने हम लोगों पर आक्रमण ही किया है। मैं वेदों और शास्त्रों का पारगत विद्वान्, साधु पुत्र सत्यक! आपसे कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। क्या आप मुझे प्रश्न करने का अवसर देंगे?"

"सहर्ष सत्यक," गौतम ने कहा—"जो चाहो, प्रश्न करो, गौतम उत्तर देने के लिए तैयार है।"

"क्या आप अपने शिष्यों को यह उपदेश देते हैं" सत्यक ने प्रश्न रूप में पूछा—'कि रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है?"

"हाँ सत्यक!" गौतम ने उत्तर दिया।

"मगर यह तो ठीक नहीं महाराज!" सत्यक ने कुछ संदिग्ध स्वर में कहा—"मेरी समझ में आपका यह मत गलत है—झूठा है।"

गौतम ने सत्यक को समझाया। अनेक बार समझाने की कोशिश की। अनेक उदाहरण दिये—अनेक विचार उपस्थित किये। पर दुराग्रही सत्यक, अभिमानी सत्यक! उसने एक बात भी न मानी। वह अपनी धुन में ऐंठा हुआ बार-बार यह कहता ही गया कि गौतम, आपका मत गलत है। आप दुनिया को अपने विचारों का प्रचार करके गुमराह बना रहे हैं।

योगी गौतम का इतना अपमान! प्रकृति काँप उठी—आकाश दहल उठा। देवताओं में हलचल मच गयी। वज्रपाणि यक्ष, सत्यक का सर्वनाश करने के लिए दहकते हुए लोहे या वज्र लेकर आस-

मान पर आ पहुँचा। सत्यक ने इसे देखा। गौतम की भी उस पर नजर पड़ी। गौतम मुस्कुराये, सत्यक की आत्मा पत्ते की भाँति हिल उठी। उसने भयभीत होकर सविनीत स्वर में उत्तर दिया—"भगवान्! मैं आपकी शरण में हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। मैं यह नहीं कहता कि रूप मेरा आत्मा है। मैं आपकी बातों से अक्षर-अक्षर सहमत हूँ।"

"क्या तुम्हें अपनी पूर्व की बाते भूल गई सत्यक?" गौतम ने उत्तर दिया—"बेहोश न बनो! दृढ़ता से अपनी बातों पर स्थिर रहो।"

"क्षमा करो भगवन! क्षमा करो!" सत्यक ने कहा—"मैं भूला हुआ था। मुझे अपनी शरण में लीजिये। अपनी इस पराजय से मुझे इस समय एक छोटी-सी उपमा याद आ गयी। जैसे एक कस्बे में कोई पुष्करिणी हो। उसमें एक केकड़ा हो। कस्बे के लड़के-लड़कियों ने उस केकड़े को पानी से निकालकर जमीन पर रख दिया हो। और जब-जब वह अपने आरों को निकालता हो, तब-तब लड़के उसके आरों को काट देते हों। कुछ देर बाद बेचारा केकड़ा एकदम आहत हो गया—छिन्न-भिन्न हो गया। उसके शरीर में जल मे उतरने की भी शक्ति शेप न रही।

"ठीक उस केकड़े की तरह, इस समय मेरी यह दशा हो गयी है भगवन्! आपने अपने तर्कों से मुझे अवाक् कर दिया है। अब मैं आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ?"

सत्यक साश्रु आँखों से गौतम के चरणों पर गिर पड़ा। गौतम ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फेरकर कहा—"उठो सत्यक! चिन्ता न करो। अभिमान को हृदय से निकाल दो। अभिमान की भावना से चित्त की वृत्तियाँ कलुषित हो जाया करती है।"

सत्यक गौतम के पास से जब अपने घर की ओर लौटा, तब

उसकी आत्मा शुद्ध थी, चित्त दर्पण के समान था ! योगी गौतम की शिक्षा का प्रभाव ही तो है !

१२

इन्द्रपुरी में योगी

श्रावस्ती में मृगार माता का भव्य प्रासाद ! उन दिनो गौतम उसी में निवास करते थे। देवताओं के राजा इन्द्र ने गौतम के सामने प्रकट होकर कहा—"भगवान् ! तृष्णा की जंजीरों से मुक्त ब्रह्मचारी, देवता मनुष्यों से कैसे श्रेष्ठ होता है ?"

गौतम ने उत्तर दिया—"वह सब धर्मों को जान लेता है, जानकर भी उन्हें छोड़ देता है। वह दुःखों का अनुभव करता है, विरागी बनकर परिभ्रमण करता है। उसके मन में त्रास नहीं उत्पन्न होता। दुःख के अभाव में वह अपने शरीर ही में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे जन्म धारण करने और मरने की फिर आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसलिए ऐसे देवता, मनुष्यों से श्रेष्ठ होते है देवराज !"

इन्द्र गौतम की बातों से सन्तुष्ट हो उसी जगह अन्तर्धान हो गया।

'भगवान् गौतम और इन्द्र का संभाषण प्रारम्भ हुआ। भगवान् ने उसके साथ मुक्ति के सम्बन्ध में बात की। मगर उसने भगवान् की बातों का समर्थन किया या नहीं ? उसकी समझ में भगवान की बात आयी या नही ? तो फिर क्यों न इन्द्रलोक में

चलकर इन्द्र से इस सम्बन्ध में बात करूं !' भगवान् गौतम के पास बैठे हुए योगी महा मौद्गल्यायन ने यह सोचकर, मृगार के माता के प्रासाद से अन्तर्धान हो, देवलोक की राह ली।

योगी महा मौद्गल्यायन ! उन्हें देवलोक में पहुँचते देर ही कितनी लगती है। इन्द्र उस समय एक पुण्डरीक उद्यान में वाद्य, संगीत और नर्तकियों के साथ विहार कर रहा था। उसने योगी महा मौद्गल्यायन को आते हुए देखकर वाद्य बन्द करवा दिया। नर्तकियाँ अपने-अपने महलों में चली गई। जैसे उद्यान में सन्नाटा-सा छा गया।

देवराज इन्द्र ने मौद्गल्यायन की अगवानी करके कहा—"आइये योगिराज ! बहुत दिनों बाद आपने दर्शन दिये !"

मौद्गल्यायन देवराज के श्रद्धापूर्वक संकेत किये हुए आसन पर बैठ गये। इन्द्र भी उनके ही सामने एक निम्नकोटि का आसन लेकर बैठ गया। मौद्गल्यायन ने इन्द्र से कुशल संवाद पूछकर कहा—"देवराज ! आपसे भगवान् गौतम ने मुक्ति के सम्बन्ध में बात की है, क्या मैं भी उसे सुन सकता हूँ ?"

"हाँ, बात तो भगवान ने की थी योगिराज," इन्द्र ने उत्तर दिया—"पर मुझे केवल अपना काम इतना अधिक रहता है कि मैं भगवान की कही हुई बात को अच्छी तरह याद न रख सका। मुझे दुःख है कि मैं उसे भूल गया।"

मौद्गल्यायन चुप रहे। समझ गये, अभिमानी इन्द्र क्यों बताने लगा। मौद्गल्यायन को चुप देखकर इन्द्र ने अपनी प्रशंसा करके कहना शुरू किया—"योगिराज ! पूर्वकाल में देवता और असुरों में संग्राम हुआ था। संग्राम में देवता विजयी हुए—असुर हारे। मैंने इसी विजय की खुशी के उपलक्ष्य में, उस समय प्रासाद बनवाया था। प्रासाद का नाम 'वैजयन्त' है। उसके केवल एक भाग में सौ खण्ड हैं। एक-एक खण्ड में सात महल हैं।

प्रत्येक महल में सात-सात अप्सराएँ निवास करती हैं। प्रासाद की मनोरम शोभा देखने योग्य है योगिराज ! क्या आप भी उसे देखना चाहते हैं ?"

मौद्गल्यायन चुप ही रहे।

इन्द्र उन्हें लेकर प्रासाद की ओर चला। आगे मौद्गल्यायन थे, पीछे इन्द्र। इन्द्र की परिचारिकाओं ने इन्द्र को प्रासाद में आते हुए देखा। बस, सबकी सब महल में घुस गईं। उसी प्रकार जैसे ससुर को आते हुए देखकर पुत्र-वधुएँ लज्जा से ओट में छिप जाती हैं।

इन्द्र मौद्गल्यायन को लेकर महल में प्रविष्ट हुआ और उन्हें महल की रमणीयता दिखाकर कहने लगा—"इसकी शोभा देखिए योगिराज। इसकी उपमा का प्रासाद आपको तीनों लोक में भी कहीं न मिलेगा।"

इन्द्र को इतना अभिमान ! उसके प्रासाद के जोड़ का तीनों लोक में भी कहीं कोई महल न मिलेगा ! योगिराज कुछ विस्मित हुए। उन्होंने रहस्य-भरी दृष्टि से इन्द्र की ओर देखा। इन्द्र—अभिमानी इन्द्र—योगिराज की रहस्य-भरी दृष्टि को भला क्या पहचान सकता था !

योगी मौद्गल्यायन ! ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ उनकी हथेली पर नाच रही थीं। इन्द्र ने उनकी योग-शक्ति से न डरकर उन्हीं के सामने ऐसी अभिमानपूर्ण बात कही ! बस, फिर क्या था ? योगी मौद्गल्यायन की योग-शक्ति की वंशी गुप्त रूप से बज उठी। सारा इन्द्रलोक काँपने लगा। परियों में हलचल मच गई। अप्सराएँ इधर से इधर भागने लगीं। जिधर सुनिए उसी ओर से यह आवाज़—'रक्षा करो भाई, रक्षा करो !!' सारा इन्द्रासन उलटकर मृत्युलोक में जाना चाहता है। प्रलय का ऐसा भयानक तूफान आज तक देवलोक में कभी नहीं आया !

इन्द्र ने भयभीत होकर योगी मौद्गल्यायन की ओर देखा। वह हँस पड़े—मुस्कुरा उठे। उन्होंने कहा—"क्यों डरते हो देवराज!"

योगी ही की यह सब माया जानकर देवराज ने उत्तर दिया—"क्षमा कीजिए योगिराज! क्षमा कीजिए! मुझसे भूल हुई। मैं अपने अभिमान के नशे में आपकी योग-शक्तियों को नही परख सका।"

"अच्छा, अब तो भगवान् गौतम की कही हुई बात याद है न देवराज?" योगी ने कहा—"क्या अब भी तुम उसके विषय में बताना अस्वीकार करोगे?"

"नहीं योगिराज!" इन्द्र ने उत्तर दिया—"बात तो मुझे पहले ही याद थी। पर मैं अभिमान के नशे में चूर था। मैंने सचमुच आपका अनादर किया। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।"

इन्द्र भगवान् गौतम की मुक्ति के सम्बन्ध में कही हुई बात मौद्गल्यायन को बताकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। योगी ने इन्द्र को क्षमादान देते हुए कहा—"देवराज! अभिमान को हृदय में स्थान न दो। गरीब, अमीर सभी का एक दृष्टि से सम्मान करना सीखो।"

इन्द्र ने मस्तक झुकाकर योगी की बात स्वीकार कर ली। इसके बाद योगी मौद्गल्यायन फिर एक क्षण में मृत्युलोक में आ पहुँचे। क्यों न हो, योगी ठहरे न! योगी के लिए तो त्रयलोक का मार्ग भी समाप्त कर देना कुछ नहीं है।

१२

वक ब्रह्मा

श्रावस्ती में स्थित अनाथपिंडक के उद्यान में गौतम ने संघ के भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ !"

"क्या है महाराज !" सब भिक्षु एकसाथ बोल उठे।

"इस समय मुझे एक बड़ी उपदेशपूर्ण बात याद आ गई है," गौतम ने कहा—"क्या तुम लोग उसे सुनना चाहते हो? उससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि किसी मनुष्य को यह न समझ लेना चाहिए कि मैं ही सब कुछ हूँ ?"

"ऐसी भी क्या बात है भगवन् !" भिक्षुओं ने आश्चर्य के स्वर में उत्तर दिया—"हम लोग भगवान् की उपदेशमयी बातों को सुनने के लिए तो तरसते रहते हैं। अहोभाग्य ! जो भगवान्, आज स्वयं ही उपदेश देने के लिए उत्सुक हैं।"

गौतम कहने लगे। भिक्षु मूर्ति की तरह स्थिर हो उनकी बातों को प्रेम से अपने कानों में डालने लगे।

गौतम ने कहा—"भिक्षुओ ! मैं उस समय उकट्ठा के सुभग वन में स्थित शालराज वृक्ष के नीचे निवास करता था। मुझे अपनी योग शक्तियों से ऐसा ज्ञात हुआ कि इस समय वक ब्रह्मा के मन में यह धारणा उत्पन्न हुई है कि ब्रह्मलोक नित्य है, ध्रुव है। उसका न विनाश होता है, न उसे क्षति पहुँचती है। वह चिर सत्य है, चिर नित्य है।

"मुझे आश्चर्य हुआ, मेरे मानस में विस्मय की लहरें उठने लगीं। ब्रह्मा और उनका यह विचार ! ब्रह्मलोक सत्य है, नित्य है ! न उसका सर्वनाश हो सकता है, न उसे क्षति पहुँच सकती है। यह ब्रह्मा का प्रलाप है, उसकी सरासर कपोल कल्पना है।

"मैं अपने इन विचारों से इतना उत्तेजित हुआ कि तुरन्त ब्रह्मलोक की ओर चल पड़ा। ब्रह्मा में ब्रह्मलोक में मेरा स्वागत किया, मेरी अभ्यर्थना की। उसने मेरा हृदय से स्वागत करते हुए कहा—"आइए देवता! आपने तो चिर दिनों के बाद दर्शन दिया। बैठिए, आसन बिछा हुआ है।"

"मैंने ब्रह्मा के संकेत किये हुए आसन पर बैठकर कहा—'ब्रह्मा, तू अविद्या के गहन अन्धकार में पड़ा हुआ है। क्या तू सचमुच यही कहता है ब्रह्मलोक सत्य है, नित्य है, ध्रुव है?"

"'हाँ देवता!' ब्रह्मा ने उत्तर दिया—'मैं वास्तव में यही कहता हूँ कि ब्रह्मलोक नित्य है, सत्य है, ध्रुव है, उसका न विनाश हो सकता है, न उसे किसी प्रकार की क्षति पहुँच सकती है।'

"'तू भ्रम के उफनाते हुए समुद्र में गोते लगा रहा है ब्रह्मा!' मैंने कहा—'मैं तेरी इस बात का कभी समर्थन नहीं कर सकता, तू अपनी इस धारणा से सच को झूठ और झूठ को सच प्रमाणित करने का प्रयत्न कर रहा है। तेरा यह प्रत्यन निन्दनीय है, तेरा यह साहस घृणित है।'

"मेरी यह बात समाप्त भी न होने पाई थी कि ब्रह्मा का सहायक पापी मार बोल उठा—'भिक्षु! ब्रह्मा का अपमान न कर। वह ईश्वर, सृष्टिकर्त्ता और प्राणियों के पिता हैं। उनकी बात का निरादर करने से तुझे पाप लगेगा—तू नरक का भागी बनेगा। मैं कहता हूँ भिक्षु! तू मेरी बात मानकर ब्रह्मा का सम्मान कर, उनकी प्रत्येक बात को श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में स्थान दे। इससे तेरा कल्याण होगा—तुझे सहज ही में मुक्ति के दर्शन होंगे।'

"'पापी मार! चला है मुझे उपदेश देने!' मैंने अपनी उत्तेजित आँखों से उसकी ओर देखकर उत्तर दिया—'चुप रह! पापी मार! अधिक वहकी-वहकी बातें न कर। मैं तुझे अच्छी

तरह से जानता हूँ। तू समझता है, तेरी ही भाँति सभी ब्रह्मा की सिफारिश में अपना जीवन बिताएँ ! मैं तेरी और ब्रह्मा की बातों में आने वाला नहीं मार ! मुझे सत्य प्रिय है। मैं उसी का अनुसरण करूँगा।'

"पापी मार ! उसमें साहस ही कितना ! वह मेरी उत्तेजित आँखों को देखकर चुप हो गया—सहम गया ! पर ब्रह्मा तो चुप होने वाला नहीं ? वह तो सहम जाने वाला नहीं ? भला वह अपने पक्ष को अपनी आँखों दुर्बल कैसे देख सकता है ! उसने मार को सहमते हुए देखकर कहा—'ठीक तो कहता है मार, देवता ! तू मेरी बात न मानकर व्यर्थ की परेशानी क्यों अपने सिर पर उठाता है। क्या तू नहीं जानता कि केवल मेरी बात मान लेने ही से तुझे ब्रह्मलोक में स्थान मिल सकता है। ब्रह्मलोक में बड़े-बड़े तपस्वियों को भी स्थान नहीं मिलता देवता ! तू आज जान-बूझकर एक अमूल्य निधि को अपने पैरों से ठुकरा रहा है।'

"'मुझे इसकी चिन्ता नहीं ब्रह्मा !' मैंने उत्तर दिया—'तुम्हारी गति कहाँ तक है, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ।'

"'तुम मेरी गति के सम्बन्ध में क्या जानते हो देवता ?' ब्रह्मा ने कहा।

"'मैं यही जानता हूँ ब्रह्मा !' मैंने उत्तर दिया—'चाँद-सूर्य जितनी भूमि को प्रकाशित करते हैं, वहाँ तक तुम्हारी गति है। तुम्हारे अधिकार में सहस्र लोक हैं, हजारों संसार के तुम एकमात्र स्वामी हो।'

"ब्रह्मा चुप रहा। शायद मेरे शब्दों ने उसे अभिमान के आसन पर आसीन कर दिया। उसने थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद अभिमान के स्वर में कहा—'फिर मेरी बात क्यों नहीं मानते देवता ?'

"'क्या इसीलिए मानूँ कि तुम्हारा सहस्रों लोक पर अधिकार

है ?' मैंने उत्तर दिया—'मेरी गति तो तुम्हारे इन सहस्रों लोकों से भी अधिक है ! मैं जिसे जानता हूँ, उसे तुम नहीं जानते ब्रह्मा ! वहाँ तक तो तुम्हारी दृष्टि ही नहीं पहुँच सकती। फिर तुम उसे जान कैसे सकोगे, समझ कैसे सकोगे ?'

"मेरी बात सुनकर ब्रह्मा चौंका— उसे विस्मय हुआ। उसने मेरी ओर गर्वीली दृष्टि से देखकर कहा—'अच्छा यह बात ! अब सँभल जाओ देवता ! मैं तुम्हें यहीं अदृश्य कर देना चाहता हूँ।'

"'सँभलने की आवश्यकता नहीं ब्रह्मा !' मैंने उत्तर दिया—'मैं तुम्हारी आँखों के सामने विद्यमान हूँ। जो करना चाहो करो।'

"ब्रह्मा ने अपनी शक्तियों से मुझे अदृश्य करने का बार-बार प्रयत्न किया—बार-बार जोर लगाया, पर असफलता, निराशा ! वह विवश-सा हो गया। अब मेरी बारी आई। मैंने ब्रह्मा को सावधान करते हुए कहा—'अब यह दूसरा अवसर मेरा है ब्रह्मा ! मुझे भी अपनी शक्ति का परिचय देने दो।'

"ब्रह्मा मेरे मुँह की ओर देखने लगा। केवल क्षण मात्र की देर थी। सबके सब अदृश्य हो गये—लुप्त हो गये। मेरी बात सुनते थे, पर मुझे देख न पाते थे। कुछ देर के बाद मैंने अपनी योगमाया हटा ली; और मैं मुस्कुराता हुआ मृत्युलोक लौट आया। कुछ दिनों के बाद मैंने सुना कि ब्रह्मा की धारणा बदल गई। वह अपने ही अस्तित्व को सब कुछ न मानकर दूसरों के अस्तिव का भी मूल्य समझने लगा।"

गौतम की बात समाप्त होते ही भिक्षुओं के मुख से एकसाथ ही यह आवाज निकल पड़ी—"अभिमानियों की यही दशा होती है भगवन् !" आवाज चारों ओर गूंज उठी, भिक्षु शांत हो गये। पर थोड़ी देर तक आकाश में यह आवाज गूँजती रह गई—'अभिमानियों की यही दशा होती है भगवन् !'

त्याग और साधुता

सूनापरांत का हिंसा-प्रवृत्त ग्राम ! उसमें चोरी, डकैती और ठगी का व्यवसाय जोरों से चल रहा था। जिसको देखिए, वही इस काम में परिलिप्त ! जिसको देखिए, वही इस काम में संलग्न ! मानो वहाँ चोरों, डकैतों और लुटेरों का एक अलग गाँव ही बसा हो। आसपास के लोगों की कौन कहे, उसके सुदूर-वासी तक गाँव के दुर्दान्त अत्याचारों से आकुल हो उठे थे।

उन दिनों भगवान् गौतम श्रावस्ती के चेतवन में निवास करते थे ! उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनन्द को बुलाकर कहा—"आनन्द, तू तृष्णा और दुःख के बन्धनों से विमुक्त होकर किस गाँव में निवास करेगा ?"

"मैं···!" आनन्द ने उत्तर दिया—"सूनापरांत नामक गाँव में निवास करूँगा ! वहाँ के रहने वालों ही को उपदेश दूँगा।"

"सूनापरांत गाँव के मनुष्यों की प्रकृति से क्या तुम परिचित हो आनन्द !" गौतम ने कहा—"मेरी समझ में तुम उन्हें नहीं जानते। अगर जानते तो कभी ऐसी बात मुँह से न निकालते।"

"नहीं भगवन् ! ऐसी बात नहीं।" आनंद ने उत्तर दिया—"मैं सूनापरांत गाँव के मनुष्यों की प्रकृति से भली भाँति परिचित हूँ। बात ही बात में किसी के गले पर छुरी चला देना उनका व्यवसाय-सा है। किसी का गला घोंटकर धन छीन लेना, किसी गाँव को बर्बाद कर देना, किसी नगर को उजाड़ देना, यह सब तो उनके जीवन के नित्य के काम हैं। सचमुच बड़ा विकट गाँव है भगवन्, ऐसे अत्याचारी गाँव भूमि पर बहुत कम देखने में आते हैं।"

"तो फिर यह जानकर भी तुम सूनापरांत में जाने का साहस करते हो आनन्द।" गौतम ने कहा।

आनन्द ने श्रद्धा से मस्तक गौतम के सामने झुका लिया।

गौतम ने उन्हें अपनी बात पर स्थिर जानकर कहा—"अच्छा बताओ आनन्द। यदि सूनापरांत के रहने वाले तुम्हें गाली दें, तब तुम क्या करोगे?"

"मैं उनका आदर करूँगा, उन्हें श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में स्थान दूँगा।" आनन्द ने उत्तर दिया—"और उनसे कहूँगा कि तुम लोग सज्जन हो, भद्र हो।"

"और यदि सूनापरांत के रहने वाले तुम्हारे शरीर पर तीक्ष्ण शस्त्र से आघात करने लगे तो?" गौतम ने कहा—'क्या तब भी तुम उन्हें सज्जन और भद्र नाम से ही पुकारोगे?"

"उस समय तो मैं अपने को धन्य समझूँगा भगवन्!" आनन्द ने उत्तर दिया—"संसार के कष्टों से परेशान होकर बहुत से भिक्षु आत्महत्या करने के लिए शस्त्र का अनुसंधान करते हैं, सूनापरांत गाँव के निवासियों की कृपा से वह शस्त्र मुझे अपने ही आप मिल जायेगा भगवन्! इसलिए मैं उनकी प्रशसा ही करूँगा, उन्हें धन्यवाद ही दूँगा।"

"वाह आनन्द, क्यों न हो? तू सचमुच बौद्ध भिक्षुओं के नाम को संसार में ऊँचा उठायेगा!" गौतम ने कुछ देर तक सोचकर आनन्द की ओर स्नेहमयी दृष्टि से देखा। आनंद गद्‌गद हो गये। गौतम ने प्रेम-भरे शब्दों में कहा—"आनंद! तू सचमुच पूर्ण भिक्षु है। तू सचमुच, सूनापरांत गाँव के निवासियों को अभद्र से भद्र बना सकेगा!"

आनंद ने गौतम का आशीर्वाद शीश पर लिया। इस आशीर्वाद से आनंद की आत्मा को कितना सुख मिला होगा—कितना हर्ष हुआ होगा!

भगवान् के आशीर्वाद का असीम सुख अपने अंतर में समेटे हुए आनद सूनापरांत गांव में गये ! उनकी शिक्षा का प्रभाव, उनकी ओजस्विनी वाणी की जादूमयी क्षमता ! एक ही वर्ष में गांव के पांच सौ मनुष्यों ने भिक्षु का व्रत ले लिया। शेष मनुष्य भी अपनी राक्षसी उद्दण्डता को त्यागकर जैसे दैवी गुणों से सम्पन्न हो गये।

आनद ने अपने पांच सौ भिक्षुओं के साथ गौतम के पास पहुंचकर कहा—"सूनापरांत गांव की यह भेंट है भगवन् ! इन्हें अपनी शरण में लीजिये।"

गौतम ने आनद के पांच सौ भिक्षुओं को आशीर्वाद देकर कहा—"आनंद ! मैं तुम्हारे त्याग और तुम्हारी साधुता की किन शब्दों में प्रशंसा करूं ! तुमने सूनापरांत गांव की नये संस्कार में सृष्टि करके, वास्तव में अद्भुत काम किया है।"

जब गौतम की बात समाप्त हुई, तब आनन्द का मस्तक झुका हुआ था। आंखों में प्रेम के आंसू थे। वे आंसू! उनमें कितनी श्रद्धा रही होगी—कितनी भक्ति रही होगी!

१५
अनाथपिंडक

वह एक गृहपति था, उसका नाम था अनाथपिंडक। वह भगवान् गौतम का भक्त था। उन्हीं के चरणों में अपने हृदय की भक्ति लुटाया करता था। गौतम को कौन कहे ? किसी भिक्षु ही को

जब देख पाता, तब ऐसा आनंदित होता मानो उसे सदेह स्वर्ग मिल रहा हो। क्यों न हो! हृदय ही तो है! चाहे जिस ओर झुक जाय!

एक दिन गृहपति बीमार पड़ गया। उसने अपनी दशा सुधारने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, पर अवस्था बिगड़ती ही गई। उसका शरीर रोग से जर्जर ही होता गया। अशक्त तो इतना हो गया कि चारपाई से उठने-बैठने की भी उसकी क्षमता जाती रही।

उन दिनों गौतम अपने प्रमुख शिष्यों के साथ श्रावस्ती के जेतवन में निवास करते थे। रोगी गृहपति के कानों में भी आवाज पड़ी। वह अपने उपास्य देव को अपने पास ही स्थित जानकर आनन्द से गद्गद हो गया। क्यों न हो, उपासक और उपास्य का भाव ही तो है।

गृहपति ने अपने एक आदमी को बुलाकर कहा—"जाओ, भगवान् गौतम के पास जाओ। उन्हें और सारिपुत्र को मेरा प्रणाम कहना। सारिपुत्र से कहना कि अनाथपिंडक गृहपति बीमार है, उसने आपको अपने पास बुलाया है!"

गृहपति के आदमी ने भगवान् गौतम के पास जाकर उन्हें और सारिपुत्र को गृहपति का विनय-संदेश सुना दिया।

गौतम ने सारिपुत्र को आदेश देते हुए कहा—"आयुष्मान् सारिपुत्र! जाओ, बीमार गृहपति के पास जाकर उसे संतोष दो।"

सारिपुत्र गौतम की आज्ञा शीश पर धारण करके गृहपति के घर की ओर चल दिये।

गृहपति के घर पहुँचकर सारिपुत्र ने गृहपति से कहा—"गृहपति, कैसी तबीयत है? दुःख का वेग कुछ कम हो रहा है या नहीं?"

"नहीं भगवन् !" गृहपति ने शीश झुकाकर उत्तर दिया—"दुःख का वेग घटने की कौन कहे, दिनों-दिन प्रबल होता जा रहा है। हृदय में जलन तो ऐसी मालूम होती है, मानो प्राण सूखे जा रहे हैं।"

गृहपति को भयंकर रोगों से आक्रांत देखकर सारिपुत्र ने उसे उपदेश दिया—उसे अपनी अमृतमयी बातें सुनाईं। सारिपुत्र की अमृतमयी वाणी ! उनका तृष्णा की जंजीरों को तोड़ने वाला मनोहर उपदेश ! गृहपति आनन्द से गद्गद हो गया, उसकी आँखों से भक्ति के सजीव आँसू भूमि पर गिरने लगे।

"क्यों गृहपति !" सारिपुत्र ने उसे रोते हुए देखकर कहा—"क्यों रो रहे हो ! दिल को कमजोर न करो। दुःखों के वेग को दृढ़ता से बर्दाश्त करो।"

"मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ भगवन् !" गृहपति ने उत्तर दिया—"इस समय गौतम भगवान् की सुनहली स्मृति ने मेरे मानस को नचा-सा दिया है। मैं सदा उनका भक्त रहा हूँ, पर उनका भक्त होने पर भी, मुझे ऐसे उपदेश कभी सुनने को नहीं मिले, जैसे आज आपने मुझे दिये है ! अगर ऐसे उपदेश मुझे अपने जीवन में सुनने को मिले होते तो आज मैं वन की किसी कुटिया ही में बीमार पड़ा होता।"

"संन्यासी जीवन की ये शिक्षाएँ गृहपतियों की समझ में नहीं आतीं।" सारिपुत्र ने कहा—"इस समय तुम्हारे जीवन का अंतिम काल निकट है, इसीलिए तुम्हारे हृदय पर इनका प्रभाव भी पड़ सका है।"

गृहपति का शीश श्रद्धा से झुक गया। उसकी आँखों में प्रेम और भक्ति के आंसू थे ! सारिपुत्र की आत्मा जैसे दया, सहानुभूति और करुणा से कातर हो उठी। बौद्ध संन्यासी ही तो ठहरे ! प्रेम से उसके आंसुओं को पोंछकर कहने लगे—

"न रोओ गृहपति ! भगवान् गौतम की स्मृति तुम्हारे दुःखों का शमन करके तुम्हारा कल्याण करेगी ।

सारिपुत्र गृहपति को संतोष देकर चले गये । उनके जाने के बाद गृहपति की सांसें उखड़ गईं। वह देवलोक का यात्री बना ।

गृहपति ! भगवान् सारिपुत्र का भक्त ! उनकी वाणी को हृदय के स्वर से सुनने वाला ? जब उन्हें अपनी आँखों से देखता, तब उसे ऐसा जान पड़ता मानो जगत् में सारिपुत्र को छोड़कर और कोई है ही नहीं ! भक्त की भावना ही तो ठहरी । फिर वह मरने पर क्यों न देवलोक का अधिवासी बने ? क्यों न जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त होकर आकाश में ध्रुव की भाँति प्रकाश-मान हो ?

गृहपति देवलोक में गया । उसे वहाँ स्थान मिला । सारि-पुत्र ऐसे सर्वज्ञ योगी की कृपा ही तो ठहरी !

एक दिन अनाथपिंडक देवता के रूप में भगवान् गौतम के पास गया और उन्हें श्रद्धा से प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया । देवता ने गौतम को देखा और गौतम ने देवता को । गौतम कुछ कहें, इसके पहले ही देवता बोल उठा—"भगवन् ! आपका यह जेतवन मुझे अत्यधिक प्रिय है। कर्म, शील, विद्या और धर्म से संयुक्त जीवन संसार में अत्यन्त उत्तम है। इन्हीं से मनुष्य की आत्मा शुद्ध होती है, कुल और संपत्ति से नहीं ।"

गौतम चुप रहे । मानो देवता की बातों का समर्थन कर रहे हों । देवता गौतम के मौन को अपना समर्थन जानकर वहीं अदृश्य हो गया ।

गौतम भगवान् के पास ही आयुष्मान आनन्द बैठे हुए थे । उन्होंने देवता के अदृश्य हो जाने पर सविनीत स्वर में कहा—"यह देवता कौन है भगवान् । मेरी समझ में तो यह अनाथ-

पिंडक गृहपति होगा। क्योंकि वह आयुष्मान सारिपुत्र का अनन्य भक्त था।"

"हाँ, तुम ठीक कहते हो आनन्द!" गौतम ने उत्तर दिया—"वह अनाथपिंडक गृहपति ही था। सारिपुत्र के उपदेशों ही के प्रभाव से उसे देवलोक में स्थान मिला है।"

भगवान् गौतम के मुंह से सारिपुत्र की प्रशंसा सुनकर यदि आनन्द भी मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगा हो तो आश्चर्य क्या?

१६

गृहपति उपालि

वह एक बूढ़ा जैन साधु था! बड़ा अभिमानी, बड़ा क्रूर! दूसरों की कीर्ति को तो कभी कान से न सुनता था—दूसरों के वैभव को तो कभी फूटी आँख से भी नहीं देखता था। फिर वह गौतम की कीर्ति को कैसे सुनता, उनकी चतुर्दिक छिटकी हुई कीर्ति-कौमुदी को कैसे देखता? वह एक दिन नालंदा में भिक्षा के लिए पर्यटन करता हुआ भगवान् गौतम के पास जा पहुँचा। भगवान् उन दिनों नालंदा के आम्रवन में निवास करते थे।

भगवान् गौतम ने जैन साधु का आदर से स्वागत करते हुए कहा—"आओ साधु, बैठो, आसन बिछा है।"

साधु आसन पर बैठ गया। उसका कपटी मन, काला हृदय। गौतम ने उसके मन की प्रवृत्ति समझकर कहा—"तपस्वी! जैन

साधु समाज के आचार्य, निगठनाथ पुत्त, पापी के लिए किसे दण्ड का विधान बताते हैं ?"

"शारीरिक दण्ड का विधान गौतम ?" साधु ने उत्तर दिया।

"शारीरिक दण्ड का विधान !" गौतम ने आश्चर्य के स्वर में कहा—"मेरी समझ में तो वहाँ दण्ड के लिए कोई स्थान ही नहीं। साधु-संन्यासियों को दण्ड की घोषणा न करके कर्म ही की घोषणा करनी चाहिए और यही उचित है।"

"शारीरिक दण्ड के स्थान पर कर्म की घोषणा !" साधु ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से गौतम की ओर देखकर उत्तर दिया—"यह कभी नहीं हो सकता। अच्छा, यह बताओ गौतम, कि तुम पाप कर्म के लिए किसको महादोषी प्रमाणित करते हो ?"

"मैं मन-कर्म को महादोषी मानता हूँ साधु !" गौतम ने कहा।

साधु को आश्चर्य हुआ, विस्मय हुआ। पाप के लिए मन-कर्म को महादोषी ! यह गौतम की निरी अज्ञानता है। वह गौतम के पास से उठकर अपने आचार्य निगंठनाथ पुत्त के पास गया।

जैन साधुओं की परिषद् ! उसमें लोणकार निवासी उपालि भी बैठा था। दूर ही से बूढ़े साधु को अपने पास आता हुआ देख-कर निगंठनाथ पुत्त ने कहा—"क्यों साधु ! दोपहरी की इस प्रचड वेला में कहाँ से आ रहे हो ?"

"मैं श्रमण गौतम के पास से आ रहा हूँ आचार्य !" साधु ने उत्तर दिया।

"श्रमण गौतम से तुम्हारी क्या बातचीत हुई साधु !" जैन साधुओं के आचार्य ने पूछा।

साधु ने अपना और गौतम का संभाषण संक्षेप में अपने

आचार्य को सुनाकर कहा—"वह मुण्डक संन्यासी ! भला वह पाप के लिए मन-कर्म को दोषी बताता है। उसकी हिम्मत तो देखिए, वह तो शारीरिक दंड को कुछ मानता ही नहीं।"

गृहस्थ उपालि, निगंठनाथ पुत्त का भक्त ! जैन सिद्धांतों का अनन्य सेवी ! वह अपने कानों से कैसे जैन सिद्धांतों के खिलाफ कोई बात सुन सकता था। वह बूढ़े साधु के मुंह से गौतम की बात सुनकर उबल पड़ा—उसकी नस-नस में एक क्रोध-सा नाचने लगा। उसने उत्तेजना के स्वर में अपने आचार्य से कहा—"मैं जाता हूँ, श्रमण गौतम के पास आचार्य ! उससे विवाद करके, उसे जैन साधुओं के सिद्धान्तों के खिलाफ आवाज उठाने का मजा चखा दूंगा। सच कहता हूँ आचार्य ! उसे विवाद में ऐसा नचाऊंगा कि उसकी तबीयत साफ हो जायेगी।"

उपालि की बात समाप्त होते ही बूढ़ा जैन साधु बोल उठा—"ऐसा न कहो उपालि ! गौतम के सामने जाते ही कहीं तू भी अन्यान्य विवादकों की भाँति गौतम का श्रावक न हो जाये ! क्या तू जानता नहीं कि गौतम जादूगर है। वह अपने जादू से दूसरों की बुद्धि को भ्रम में डाल देता है।"

उपालि कुछ कर्तव्य-विस्मृत होकर जैन साधु की ओर देखने लगा। वह इस बात का क्या जवाब दे ? उसके पास कुछ जवाब नहीं ! वह कुछ भौचक्का-सा हो गया। उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखकर निगंठनाथ पुत्त से न रहा गया। उसने उपालि की प्रशंसा करते हुए कहा—"नहीं साधु, ऐसी बात नहीं। उपालि के हृदय पर श्रमण गौतम की माया अपना कुछ भी प्रभाव न डाल सकेगी।"

निगंठनाथ पुत्त का आशीर्वचन ! उपालि का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। उसने अपने बूढ़े आचार्य के सामने सिर झुकाकर कहा—"मैं जाता हूँ आचार्य, गौतम के पास। मुझे आज्ञा

दीजिये।"

निगंठनाथ पुत्त ने अपना हाथ उठाकर उपालि के सिर पर रखा। उपालि मन में प्रसन्नता के लड्डू खाता हुआ गौतम के पास गया।

उपालि ने भगवान् को प्रणाम करके कहा—"गौतम, क्या यहाँ बूढ़ा जैन साधु आया था? उसके साथ आपकी क्या बात-चीत हुई थी?"

"हाँ, आया था गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया। साथ ही, उन्होंने अपनी और जैन साधु की बातचीत भी गृहपति को सुना दी।

गृहपति चुप रहा—मंत्रमुग्ध की नाईं गौतम की ओर देखता रहा। मानो हृदय से वह उनकी बातों का समर्थन कर रहा हो। गौतम ने इसके बाद उसे अपना उपदेश भी सुनाया। गौतम का उपदेश सुनकर तो, जैसे गृहपति के हृदय की आँखें खुल गईं। उसने सविनीत स्वर में गौतम से कहा—"मैं आपकी बातों से सन्तुष्ट हुआ भगवान्! मुझे अब अपनी शरण में लीजिये।"

"सोचकर कहो गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया—"तुम्हारे ऐसे बुद्धिमान् मनुष्यों को अपना काम सोच-विचारकर करना चाहिए।"

"मैं आपकी इस बात से और प्रसन्न हुआ भगवान्!" गृहपति ने भक्ति से गद्गद होकर कहा—"एक वह जैनी संप्रदाय के साधु है, जो शहर में पताका उड़ाते फिरते हैं कि उपालि, हमारा श्रावक हो गया और एक आप है, जो मुझे उपदेश दे रहे है कि सोच-समझकर काम करो गृहपति!"

"गृहपति!" भगवान् गौतम ने फिर कहा—"तुम्हारा वंश सदा से जैन साधुओं का पुजारी रहा है, सदा से तुम उन्हें दान देते आ रहे हो! बौद्ध भिक्षु के जाने पर भी, तुम्हे उन्हें दान दे[illegible]

पड़ेगा।"

"क्यों न हो भगवान्!" गृहपति ने उत्तर दिया—"यह आप ही को शोभा देता है। दूसरे कहते हैं कि दूसरे संप्रदाय के श्रावकों को दान न दो—उनकी सहायता न करो। पर भगवन्, आप कहते हैं कि तुम्हें दूसरों को भी दान देना पड़ेगा।"

भगवान् गौतम की कृपा! उनकी शिक्षा का अचूक प्रभाव! गृहपति भिक्षु हो गया। उनके बौद्ध झंडे के सामने उसने अपना मस्तक झुका लिया। वह आनन्द से अपने घर गया। उस समय उसके हृदय में श्रद्धा और भक्ति को छोड़कर कुछ था ही नहीं!

गृहपति ने अपने घर पहुँचकर अपने द्वारपाल को बुलाकर कहा—"दौवारिक! आज से जैन साधुओं के लिए मेरा द्वार बन्द कर दो और यह घोषणा कर दो कि आज से गृहपति उपालि बौद्ध श्रावक बन गया।"

नगर में डंका बजा। बूढ़े जैन साधु के कानों में भी आवाज़ पड़ी। वह जैन साधुओं के आचार्य, निगंठनाथ पुत्त के पास गया और उसे भी यह संवाद सुनाया।

आचार्य आश्चर्य में पड़ गया! उसे विश्वास ही नहीं हुआ! उसने जोर देकर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता साधु! गृहपति उपालि कभी बौद्ध भिक्षु नहीं बन सकता! कहीं ऐसा न हुआ हो कि गौतम स्वयं ही जैन श्रावक न बन गया हो! मैं जानता हूँ, साधु, पता लगाऊँगा कि उपालि बौद्ध श्रावक हुआ या नहीं?"

निगंठनाथ पुत्त साधुओं की एक बड़ी भारी जमात लेकर गृहपति उपालि के मकान पर गया। गृहपति के द्वारपाल दौवारिक ने उसे देखकर कहा—"ठहरिए, भीतर न जाइए। गृहपति उपालि बौद्ध श्रमण हो गये हैं।"

निगंठनाथ पुत्त दरवाजे पर रुक गया। द्वारपाल ने भीतर

जाकर गृहपति को इसकी सूचना दी। गृहपति ने कहा—"जाओ, दालान में आसन बिछाओ।"

गृहपति दालान में बिछे हुए ऊंचे आसन पर जाकर बैठ गया। फिर उसने द्वारपाल को बुलाकर आज्ञा दी—"जाओ, निगंठनाथ पुत्त से कहो, अब वह यहाँ आ सकते हैं।"

निगंठनाथ पुत्त गृहपति के सामने आया। मगर यह क्या ? न तो गृहपति अपने आसन पर से उठा; और न उसने जैन साधुओं के आचार्य का अभिनन्दन ही किया। पहले तो वह उन्हीं आचार्य महोदय को देखते ही अपने स्थान से तुरन्त हट जाता—उनका अभिनन्दन कर उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाता। अब सेवा-शुश्रूषा और अभिनन्दन करने को कौन कहे ! उलटे उसने एक निम्नकोटि के आसन की ओर संकेत करते हुए कहा—"आइए, यदि बैठने की इच्छा हो तो इस स्थान पर बैठ जाइए !"

निगंठनाथ पुत्त काँप उठा। उसकी नस-नस में क्रोध का ज्वार-सा आ गया। उसने उत्तेजना के स्वर में कहा—"गृहपति ! गृहपति ! ! क्या तुम पागल हो गये हो ? क्या सचमुच गौतम ने अपने जादू से तुम्हारी बुद्धि भ्रम में डाल दी ? निगंठनाथ पुत्त को अपने सामने देखकर भी तुम अपने आसन पर बैठे हो गृहपति ! मैं इसे क्या समझूँ, तुम्हारी अज्ञानता या तुम्हारा भ्रम ! !"

"कुछ समझने की आवश्यकता नहीं साधु !" गृहपति ने उत्तर दिया—"अब मैं बौद्ध श्रमण हूँ। बुद्ध भगवान् ने मुझ पर अपना जादू नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपनी शिक्षाओं से मेरे हृदय की आँखें खोल दीं। अब मैं सज्ञान हो गया हूँ—सचेत हो गया हूँ साधु ! !"

गृहपति की बात सुनकर निगंठनाथ पुत्त तो सन्नाटे में आ गया। गौतम का ऐसा सजीव उपदेश, उनकी वाणी का ऐसा

सफल प्रभाव ! कौन कह सकता है कि निगंठनाथ पुत्त का मन भी इस प्रभाव से पत्ते की भाँति नहीं काँप उठा था !

१७
शान्ति का आनन्द

कौशाम्बी में भीषण हलचल, भीषण तूफान ! औरों में कौन कहे, बौद्ध भिक्षुओं में भी शांति नही थी। जिस भिक्षु को देखिये वही विवाद में व्यस्त, जिसको देखिये वही कलह में संलग्न ! बौद्ध भिक्षुओं का जीवन क्या था, कलहकारियों का समाज ! सब ऊब उठे थे—आकुल हो उठे थे। आखिरकार एक संयमी भिक्षु से न रहा गया। वह फरियाद के लिए गौतम भगवान् के पास गया।

उसने गौतम से सविनीत स्वर में कहा—"भगवान् ! कौशाम्बी के भिक्षु-समाज में, भयंकर कोलाहल मचा हुआ है। कलह और विग्रह को सभी अपने जीवन का आनन्द मान बैठे हैं। न किसी में संयम है, न किसी में शील। न किसी में शांति है, न किसी में प्रेम। सभी विग्रह और अविश्वास की दहकती हुई अग्नि में झुलसे जा रहे है—जले जा रहे है। भगवन् ! यदि आप वहाँ चलने की कृपा न करेंगे तो कौशाम्बी के भिक्षुओं की हालत अधिक शोकजनक हो जायेगी !"

गौतम चुप रहे। मानो वह अपने मौन से कौशाम्बी में चलने की भिक्षु को स्वीकृति दे रहे हों। भिक्षु को भी इससे संतोष ही

हुआ होगा।

गौतम ने कौशाम्बी में जाकर कलहकारी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उन्हें प्यार से अपने पास बैठाकर कहा—"भिक्षुओ, कलह को छोड़ दो, विग्रह की अग्नि में अपने जीवन को न जलाओ। शान्ति जीवन का वास्तविक आनन्द है। इस आनन्द का प्रत्येक मनुष्य को उपभोग करना चाहिए। जिसमें शांति नहीं उसमें कुछ भी नहीं। शांति इस संसार-साम्राज्य की रानी है, कल्याणी है!"

"कलहकारी भिक्षु! उन्हें कलह और विग्रह ही में आनन्द मिलता था, उनका मस्तिष्क उसी में सदैव परिलिप्त रहता था। फिर वे अपने इस आनन्द को क्यों छोड़ने लगे!"

एक कलहकारी भिक्षु से गौतम की बात न सुनी गयी। मानो उसके दिमाग पर गौतम की बात ने हथौड़े चला दिये हों। वह तपाक से खड़ा होकर बोल उठा—"रहने दीजिए भगवान कलह की बात! इसकी आप चिन्ता न करें। हम लोग स्वयं ही आपस में निपट लेंगे।"

भगवान् गौतम ने कई बार भिक्षुओं को समझाने का प्रयत्न किया, पर बार-बार वही जवाब, बार-बार यही उत्तर! गौतम की महान् आत्मा को भी क्या इससे कुछ दुःख न हुआ होगा!

"क्या मतलब! जब तुम सब जानबूझकर कलह की भट्ठी में कूदना चाहते हो, तब कूदो न, स्वयं दुःखों का बोझ सिर पर उठाओगे।" गौतम यह सोचकर अपना पात्र और चीवर लेकर एक प्राचीन वन की ओर चल दिये।

उस वन में उन दिनों तीन भिक्षु निवास करते थे। उनमें एक का नाम अनुरुद्ध, दूसरे का नाम नन्दी और तीसरे का नाम किंवल था। इन तीनों भिक्षुओं का, वन के द्वारपाल को यह

आदेश था कि कोई वन में प्रवेश न करने पाये। द्वारपाल ने वन में गौतम को घुसते हुए देखकर कहा—"श्रमण! वन में प्रवेश न करो। यहाँ तीन भिक्षु—शांत बौद्ध भिक्षु—शांति और प्रेम से अपना जीवन बिता रहे हैं। तुम्हारे जाने से कदाचित् उनकी शांति और उनके प्रेम-साम्राज्य में कोई बाधा उपस्थित हो जाये!"

गौतम खड़े हो गये। आश्चर्य-भरी दृष्टि से द्वारपाल की ओर देखने लगे।

'कौन, भगवान् गौतम! वही तो हैं! फिर वहाँ रुक क्यों गये? कदाचित् द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया है।' दूर से खड़े होकर अनुरुद्ध ने अपने मन में सोचा।

फिर क्या था, एक क्षण की भी देर न लगी। वह दौड़ते हुए आये और भगवान् के चरणों में गिर पड़े। द्वारपाल तो जैसे हक्का-बक्का हो गया। अनुरुद्ध ने उससे कहा—"द्वारपाल! यह हमारे आचार्य भगवान् गौतम है। इन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करो।"

द्वारपाल का मस्तक उसके दोनों हाथों के जुड़ने के साथ ही साथ झुक गया।

अनुरुद्ध श्रमण गौतम को लेकर अपने दोनों साथियों के पास गये। मानो साक्षात् भगवान्! सबके मन में ऐसी श्रद्धा और भक्ति उमड़ पड़ी। तीनों जुट गये गौतम की सेवा में। किसी ने आसन बिछाया, कोई दौड़कर पैर धोने के लिए जल लाया। कोई बैठकर उनके पाँव ही पखारने लगा। अजीब दृश्य था, विचित्र समा था। ऐसा ज्ञात होता था, मानो श्रमण गौतम कोई देवता हों और तीनों भिक्षु प्रेम, भक्ति तथा विनय की साक्षात् मूर्ति बनकर उनकी सेवा कर रहे हों।

उनकी सेवाओं से सन्तुष्ट होकर भगवान् गौतम ने अनुरुद्ध

से कहा—"क्यों अनुरुद्ध, कहो कुशल तो हो ? इस वन में तुम लोगों को कोई कष्ट तो नहीं होता ?"

"नहीं भगवन् !" अनुरुद्ध ने उत्तर दिया—"आपकी कृपा से हम लोगों को यहां कोई कष्ट नही होता।"

"अनुरुद्ध," गौतम ने कहा—"क्या तुम लोग प्रेम, शांति और विश्वास के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हो? क्या तुम लोगों में उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक सम्मेल है, जिस प्रकार दूध और पानी मिलकर, एक ही रूप धारण कर लेता है !"

"हाँ भगवन् !" अनुरुद्ध ने उत्तर दिया—"हम लोगों में ऐसा ही प्रेम है, ऐसा ही मेल है। हम लोग अपने इस प्रेम और मेल से हृदय में गर्व का अनुभव करते है, सोचते हैं कि हम लोगों का महान् सौभाग्य है जो अपने गुरु भाइयों के साथ प्रेम, विश्वास और सहानुभूतिपूर्वक अपना जीवन बिता रहे है। हम लोगों को इससे बढकर सुखदायी जीवन, कोई दूसरा संसार में नजर ही नहीं आता।"

अनुरुद्ध के चुप हो जाने पर किंवल और नन्दी ने भी उसकी बातों का समर्थन किया। नन्दी ने कहा—"भगवन् ! हम लोगों में कोई भेद-भाव नहीं। हम लोगों में जो पहले भिक्षाचार करके लौटता है वह आसन लगाता है, पानी भरता है, भोजन बनाता है और थालियाँ लगाता है। जो पीछे लौटता है वह आसनों को समेटता है, थालियाँ साफ करता है, झाड़ू लगाता है और जो बचा-खुचा भोजन रहता है, उसे आनंद से खाकर संतोष करता है। कोई भेद-भाव नहीं, कोई अलगाव नही !"

तीनों भिक्षुओं की बात सुनकर गौतम आश्चर्यचकित हो गये। लगे अपने मन में सोचने—'एक ये है और एक वे। इन्हे शांति से प्रेम है और उन्हें कलह से ! पर दोनों में किसका जीवन सुखी है ? क्या उनका ? नही, नही, उनके सुखों की संपत्ति कलह की

अग्नि में स्वाहा हो गई है। सुखी तो हैं ये, जिन्हें शांति पर विश्वास है, प्रेम पर आस्था है!'

गौतम ने उन तीनों भिक्षुओं की पीठ ठोकते हुए कहा—"भिक्षुओ! तुम्हारे ही ऐसे बौद्ध श्रमणों से बौद्धों का मस्तक संसार में ऊंचा होगा!"

तीनों का मस्तक गौतम के सामने श्रद्धा से झुक गया। तीनों का हृदय भक्ति से गद्‌गद हो गया। क्यों न हो, भगवान् गौतम का आशीर्वाद पाकर हृदय आनन्द से गद्‌गद क्यों न हो?

१८

राजकुमार अभय

वह एक राजकुमार था। उसका नाम था अभय! जैन साधुओं का बड़ा सेवक, और बड़ा भक्त! दिन-रात जैन सिद्धान्तों ही के प्रतिपादन में लगा रहता। कहीं किसी जैन साधु को देखता तो चट उसकी अभ्यर्थना करने लगता, चट उसकी आरती उतारने लगता। जैनी साधुओं का आचार्य, निगंठनात पुत्त तो उसके लिए साक्षात् ईश्वर के सदृश था। वह जब उसकी पूजा करने लगता तब ऐसा तन्मय हो जाता मानो कोई कृपण सावधानी से गिन-गिनकर अपने रुपयों को भूमि के अन्दर गाड़ रहा हो।

एक दिन जब राजकुमार निगंठनात पुत्त के पास गया, तब उसने प्रेमपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—"राजकुमार, क्या तू मेरी एक बात मानेगा?"

"क्यों नहीं आचार्य !" राजकुमार ने उत्तर दिया—"क्या आपकी ऐसी भी कोई बात है, जिसे मैं नहीं मानता !"

"क्यों न हो, राजकुमार !" निगंठनाथ पुत्त ने कहा—"तुमसे मुझे ऐसी ही आशा है। अच्छा, मैं तुम्हें आचार्य की हैसियत से यह आज्ञा देता हूँ कि श्रमण गौतम के पास जाकर, उससे विवाद करो। विवाद में उसे परास्त कर संसार में कीर्तिशाली बनो !"

'श्रमण गौतम के साथ विवाद ! उसके सामने तो बड़े-बड़े विद्वानों ने भी पराजय स्वीकार कर ली ! फिर मैं उनसे विवाद कैसे करूंगा ? मेरे पास तो वेद और शास्त्रों की भी सम्पत्ति नहीं...' राजकुमार सोचकर सन्नाटे में आ गया। मानो उसके उठे हुए मन को पाला मार गया हो। वह लाचार गरीब की भाँति अपने आचार्य की ओर देखने लगा।

चालाक और कूटनीतिज्ञ आचार्य ! राजकुमार के मन की आकृति भाँपने में कब चूकने लगा ! उसने राजकुमार को प्रोत्साहन देते हुए कहा—"आकुल न हो राजकुमार ! मैं तुम्हें विवाद की एक सूची बनाकर दिये दे रहा हूँ। इसमें तुम्हारे प्रश्नों और गौतम के उत्तरों का क्रमशः उल्लेख है। केवल इस एक सूची का सहारा लेने ही से तुम गौतम को विवाद में परास्त कर दोगे !"

आचार्य की आज्ञा ! राजकुमार कैसे टाले ! सिखाये हुए बालक की भाँति हाथ में सूची लेकर गौतम के पास गया। गौतम बैठे थे। राजगृह की कलंदक नामक सुरम्य वाटिका में शांति से जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजकुमार उनके पास गया और उन्हे श्रद्धा से अभिवादन करके एक ओर बैठ गया !

सिखाया हुआ राजकुमार ! उसमें स्वयं बुद्धि, प्रतिभा और साहस की शक्ति तो थी नहीं ! गौतम के चमकते हुए ललाट उनकी भव्य मूर्ति और उनकी दिव्य ज्योति से परिदीप्त आकृति को देखकर, जैसे वह चकरा गया। गौतम से विवाद करने

भूल गया। उन्हें दूसरे दिन के लिए, निमंत्रण देकर अपने घर लौट गया।

दूसरे दिन की मध्याह्न वेला। गौतम अपने चार-पाँच भिक्षुओं के साथ, पात्र और चीवर लेकर राजकुमार के घर जा पहुँचे। राजकुमार ने उनकी अभ्यर्थना की, उनकी पूजा-अर्चना की। जब गौतम भोजन करने लगे, तब राजकुमार भी एक नीचा आसन लेकर उनके सामने बैठ गया।

साहसहीन राजकुमार! गौतम से कुछ पूछते हुए जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों, जैसे उसकी सज्ञान आत्मा गौतम से विवाद करने के लिए मना कर रही हो। पर आचार्य की आज्ञा! उसने बड़ी मुश्किल से विवाद की सूची अपने हाथ में ली और उसे पढ़कर गौतम से प्रश्न किया—"भगवन्! क्या भिक्षु दूसरों को अप्रिय लगने वाली बात भी बोल सकते हैं?"

गौतम ठहरे योगी! राजकुमार और उसके आचार्य की तैयार की हुई सूची का रहस्य उनसे न छिपा रहा। उन्होंने मुस्कुराकर उत्तर दिया—"राजकुमार, बिलकुल नहीं!"

राजकुमार चकराया। आश्चर्य-विस्मित होकर अपनी सूची की ओर देखने लगा। इसमें प्रश्न के बाद गौतम के उत्तर के रूप में लिखा था—"हाँ, राजकुमार! भिक्षु दूसरों को अप्रिय लगने वाली बात भी बोल सकते हैं!"

सूची बेकार हो गई! उसका तो अब मेल खाता ही नहीं। फिर अब राजकुमार क्या करे? वह गौतम से अब कौन प्रश्न करे? उन्हें उनकी बात का क्या जवाब दे? वह लज्जित-सा हुआ, परेशानी के कारण पसीने से तर-बतर-सा हो गया। मगर कुछ ही देर के बाद परेशानी का पर्दा हटा और उसकी जगह पर खीझ अपना जौहर दिखाने लगी।

खीझ के आवेग में राजकुमार का नत मस्तक ऊपर उठा।

उसने अपने हाथ की विवाद-सूची जोर से फाड़कर कहा—"नाश हो तेरा, निगंठनात पुत्त ! तूने अपनी माया में फांसकर मुझे बेवकूफ बनाया !"

"गौतम जैसे चकरा-से गये। उन्होंने विस्मय के स्वर में पूछा—"इसका क्या मतलब है राजकुमार ! तू निगंठनात पुत्त का क्यों सर्वनाश मना रहा है ! उसने तुम्हारा कौन-सा अपकार किया ?"

अपकार ! अपकार किया या नही, यह तो राजकुमार का हृदय ही जानता है। उसने निगंठनात पुत्त का फरेब गौतम के सामने खोल दिया। गौतम सुनकर मुस्कुराए, उनकी उस मुस्कान में संतोष था, शांति थी।

उस समय राजकुमार की गोद में एक छोटा-सा बच्चा खेल रहा था। गौतम ने उस बच्चे को लक्ष्य करके राजकुमार से कहा—"राजकुमार ! यदि बच्चा अपनी संरक्षिका की गलती से अपने मुँह में मिट्टी का एक टुकड़ा डाल ले, तो तुम क्या करोगे ?"

"मैं उस टुकड़े को बच्चे के मुँह से निकाल लूंगा भगवन् !" राजकुमार ने उत्तर दिया—"यदि वह आसानी से न निकल सका तो बायें हाथ से उसका सिर पकड़कर, दाहिने हाथ की उँगली टेढ़ी कर खून सहित टुकड़ा बाहर निकाल लूंगा।"

"ऐसा क्यों राजकुमार ?" गौतम ने कहा।

"इसलिए कि बच्चे पर मुझे दया आती है भगवन् !" राजकुमार ने उत्तर दिया।

"इसी तरह राजकुमार," गौतम ने कहा—"भिक्षु असत्य, व्यर्थ और दूसरों को अप्रिय लगनेवाली बात भी नहीं बोलते। वे उसी को बोलते हैं जो सत्य है, अव्यर्थ है। दूसरों को प्रिय लगने वाली झूठी और फिजूल बातों को भी भिक्षु अपने मुँह से नही

निकाला करते। जानते हो, क्यों? इसलिए कि उन्हें प्राणियों पर दया आती है।"

राजकुमार आश्चर्य-चकित होकर गौतम की ओर देखने लगा। गौतम को मेरी बात का उत्तर देने में एक क्षण की भी देर न लगी। ऐसा जान पड़ता है, मानो पहले ही से उत्तर सोचकर बैठे रहे हों। राजकुमार ने अपने मन में सोचकर कहा—"भगवन्! आपके पास बड़े-बड़े विद्वान् प्रश्नों की सूची बनाकर ले आते हैं और यह सोचते हैं कि चलकर श्रमण गौतम से विवाद करेंगे, उन्हे विवाद में परास्त कर संसार में कीर्ति के भागी बनेंगे। मगर आप उनके प्रश्नों का ऐसा उत्तर देते हैं कि उन्हें नतमस्तक हो जाना पड़ता है। भगवन्! उन प्रश्नों के उत्तर क्या आप पहले ही से सोचे रहते हैं?"

"इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ राजकुमार! बताओ, क्या तुम रथ के भागों-प्रभागों के नाम अच्छी तरह जानते हो?"

"हाँ भगवन्!" राजकुमार ने उत्तर दिया—"मैं रथ के प्रत्येक हिस्से का नाम भली भाँति जानता हूँ।"

"ठीक है," गौतम ने कहा—"जब तुमसे कोई रथ के किसी भाग का नाम पूछता है, तब तुम उसका उत्तर पहले से तो नहीं सोचे रहते?"

"पहले ही से सोच रखने की क्या आवश्यकता है भगवन्?" राजकुमार ने उत्तर दिया—"मैं रथिक हूँ। रथ के अंग-प्रत्यंगों के नाम भली भाँति जानता हूँ। जब मुझसे कोई पूछता है, तब मैं तुरन्त उसे उस भाग का नाम बता देता हूँ।"

"इसी तरह राजकुमार," गौतम ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया—"मुझे भी अपने मन पर पूर्ण अधिकार है। मैं प्रत्येक विषय को भली भाँति मानता और समझता हूँ। जब मुझसे कोई

प्रश्न करता है, तब फौरन उसका उत्तर मेरे हृदय में उद्भासित-सा हो जाता है।"

राजकुमार तो भगवान् गौतम के तर्कों को सुनकर अवाक् हो गया। वह श्रद्धा से उनके चरणों पर गिरकर कहने लगा—"भगवन्! मुझे आपकी बातों से संतोष हुआ। अब आप मुझे अपनी शरण में लें।"

उस दिन से राजकुमार अभय बौद्ध भिक्षु बन गया। निगंठनाथ पुत्त के कानों में जब यह समाचार पड़ा होगा, तब क्या उसकी आत्मा ने भी भीतर ही भीतर गौतम के गुणों की प्रशंसा न की होगी?

१९
पूसी मार

मार एक देवता का नाम है। वह संसार के सारे अवगुणों का राजा, समस्त बुराइयों का सिंहासन प्राप्त बादशाह! जिसके हृदय में प्रवेश करता है, उसकी सद्वृत्तियों को मिटाकर उसे एक ही क्षण में कुभावनाओं का भंडार बना देता है। उसका प्रभाव, उसकी क्षमता! मनुष्य एक ही क्षण में अपनी मनुष्यता को छोड़कर राक्षस बन जाता है।

एक दिन आयुष्मान् महा मौद्गल्यायन खुले स्थान में टहल रहे थे। अचानक उनका पेट गुड़गुड़ा उठा। उन्हें आश्चर्य हुआ। वे अपनी कोठरी में जाकर आसन पर बैठ गए और अपनी दिव्य

शक्तियों से पेट के गुड़गुड़ाने के कारण का पता लगाने लगे।

कौन, पापी मार! मौद्गल्यायन ने अपनी कुक्षि में मार को घुसा हुआ देखकर कहा—"भाग दुष्ट यहाँ से। तेरी यहाँ आकर श्रावकों को सताने की कैसे हिम्मत हुई?"

मार—अभिमानी मार! कुछ ऐंठा, कुछ दर्प से फूल-सा उठा। मन में सोचने लगा—साधारण श्रमण! यह मुझे क्या देख सकेगा? इसके आदि गुरु तो मुझे देख ही नहीं पाते! इसका यह पागलपन है जो मन ही मन बड़बड़ा रहा है। पागलों और श्रावकों में अन्तर ही क्या होता है।

योगी मौद्गल्यायन! सारे संसार को अपने अंतर में देखने वाले, फिर मार के मन की बात उनसे कैसे छिपी रहती। उन्होंने उसे डाटकर कहा—"दुष्ट मार! मैं तुझे देख रहा हूँ, पहचान रहा हूँ। दुष्ट! तू समझता है कि मैं तुझे नहीं देख रहा हूँ, यह तेरा निरा घमंड है। बौद्धश्रावकों से कभी तेरे मन की बात छिपी नहीं रह सकती।"

मार को अब कुछ विश्वास हुआ। वह कुछ डरा और कुछ सहमा भी! मौद्गल्यायन के मुँह से निकलकर वह किवाड़ की आड़ में खड़ा हो गया। मगर वहाँ भी खड़ा न रह पाया। मौद्गल्यायन ने उसे लक्ष्य करके कहा—"दुष्ट! मैं तुझे देख रहा हूँ। तू किवाड़ की ओट से मेरी ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देख रहा है। तू समझता है, मैं तुझे न पाऊँगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं तेरी एक-एक गतिविधि जानता हूँ। चाहे तू जिस लोक में घुसने का प्रयास कर, पर मेरी आँखों से तू छिप नहीं सकता!"

"तू जानता है, मैं कौन हूँ? मैं भी भूतकाल में तेरी ही भाँति मार था। मेरा नाम था दूसी। मेरी एक बहन थी, उसका नाम था काली। तू उसी काली का पुत्र था, सम्बन्ध में मेरा भांजा

लगता था। दुष्ट ! मैं तुझे सुना रहा हूँ अपने पतन की कहानी ! इसे ध्यान से सुनकर इससे शिक्षा ग्रहण कर !

"उन दिनों इस ससार में ककुसंघ नामक एक सम्यक्-संबुद्ध महात्मा उत्पन्न हुए थे। उनका प्रताप और यश ! कहने की बात नहीं, जगत का कोना-कोना गूंज उठा था, जिसको देखिये वही उनकी तारीफ कर रहा है, वही उनकी प्रशसा में अपनी जुबान डुला रहा है। उनके करोड़ों शिष्य भी थे। पर उनमें संजीव और विधुर मुख्य थे। दोनों इतने प्रतिभाशाली, इतने मेधावी और इतने योगशक्ति संपन्न थे कि लोगों को उनके आश्चर्य-जनक कामों को देखकर चकित हो जाना पड़ता था। उस समय ककुसंघ के शिष्यों में, इनके जोड़ के योगी शायद ही कोई और रहे हों।

"संजीव तो बड़े ही विचित्र थे। उनकी योग-शक्तियाँ, क्या बताएँ ? उनकी प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। सुनो एक दिन की बात ! वह वन के सघन भाग में प्रवेश करके, प्रायः किसी वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हो जाया करते थे। एक दिन वह ऐसे ध्यानमग्न हो गये, मानो किसी प्राणी का प्राणहीन शरीर हो ! जिसने देखा उसी ने समझ लिया, संजीव मर गये। कृषकों, बटोहियों और चरवाहों को अब अपना कर्त्तव्य अदा करने की सूझी। सबने संजीव के ऊपर तिनकों का ढेर जमा करके उसमें आग लगा दी। मुर्दा तो उन्हें समझे ही हुए थे, मुर्दा जलाने की प्रथा भी पूरी कर दी।

"पर योगी संजीव ! वह तो समाधि में स्थित थे, ध्यान में मग्न थे। उनके लिए यह आग बरसात की नन्ही-नन्ही बूंदों के समान मालूम हुई। जब उनकी समाधि छूटी, तब वह अपना पात्र और चीवर लेकर बस्ती में घूमने लगे। आग जलाने वालों ने जब उन्हें देखा तब वे ऐसे चकित हुए कि कुछ कहा नहीं जा

सकता।

"मैंने अर्थात् पूसी मार ने विधुर और संजीव को कई बार भरमाने का प्रयत्न किया, पर मुझे सफलता न मिली मार! मैं बार-बार असफल ही रहा, बार-बार मुझे धक्का ही खाना पड़ा। मैं लाख प्रयत्न करने पर भी उनकी गति को न जान सका, न परख सका।

"फिर मैंने एक दूसरी युक्ति से काम लेना शुरू किया। मैंने सोचा, मेरी तो इन बौद्ध भिक्षुओं के सामने कुछ चलेगी नहीं। फिर चलकर ब्राह्मण गृहस्थ ही को क्यों न भड़काऊँ? उनसे कहूँ, तुम लोग बौद्ध भिक्षुओं की खूब निन्दा करो, इससे उनके मन में विकार उत्पन्न होगा और फिर मुझे अपना जौहर दिखाने का अवसर मिलेगा।

"मेरी युक्ति कारगर हो गई—ब्राह्मणों ने मेरी बात मान ली। वे लगे बौद्ध श्रावकों की निन्दा करने। जहाँ सुनिए, वहीं ब्राह्मणों के मुख से यह आवाज़ निकलती है—'बौद्ध नीच है, चंडाल है। उन्हे जो अपने घर में स्थान देता है। वह नरक में जाता है, उसे दुःख प्राप्त होता है। उनकी जो उपासना करता है, वह गधे और बिजली की उपासना करता है।' पर आश्चर्य! बौद्ध श्रावकों के मन में न विकार, न क्रोध!! वे ब्राह्मणों की बात सुनते थे, सुनकर मुस्कुरा देते थे।

"योगी ककुसंघ से मेरी यह चालाकी भी छिपी न रह सकी। उन्होंने अपने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ! सावधान हो जाओ। पूसी मार ने ब्राह्मण गृहपतियों को भड़काकर उन्हें तुम्हारे विरुद्ध कर दिया। तुम लोगों को चाहिये कि मन में क्रोध को स्थान मत दो। शांति और प्रेम का अपूर्व पाठ पढ़कर, एक-दूसरे को अपना भाई और मित्र समझो।

"ककुसंघ की शिक्षा का अचूक प्रभाव! भिक्षुओं का हृदय,

मलरहित हो गया—जैसे कोई साफ आईना। मैं तो हक्का-बक्का बन गया। मेरी यह दूसरी युक्ति भी असफल रही! मैं कपट का अभिनय करके भी बौद्ध भिक्षुओं की गति को न जान सका।

"मेरा दुर्भाग्य! मुझे अपने दुष्कर्मों का कुफल भोगना था। मैंने अपने कपट की लीला यहीं नहीं समाप्त कर दी। अब मैंने दूसरी युक्ति से काम लिया। मैंने ब्राह्मण गृहपतियों को यह शिक्षा दी कि तुम लोग बौद्ध श्रावकों की उचित से कहीं अधिक प्रतिष्ठा करो। शायद उनके मन में इससे विकार पैदा हो जाय।

"माला फेरने की देर थी। युग पलट गया, भिक्षुओं की निन्दा से प्रशंसा होने लगी। जहाँ सुनिये, वहीं बौद्धों की कीर्ति का स्त्रोत-गान। पर ककुसंघ से मेरी यह चाल भी छिपी न रही। उन्होंने अपने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—अब पूसी मार ने एक दूसरी नीति का अवलंबन किया है। उस नीति की घोषणा स्पष्ट रूप से प्रत्येक भिक्षु के कानों में पड़ी रही होगी। बौद्ध भिक्षुओं की प्रशंसा में ब्राह्मणों का स्तोत्र-गान! यह क्या है? केवल पूसी मार के कपट का अभिनय। तुम लोग इससे सावधान हो जाओ। निंदा और प्रशंसा से विरत होकर जंगलों में निवास करो।

"विराग की एक धारा-सी बह चली। जिस भिक्षु को देखिए, वही उसमें स्नान कर रहा है। न किसी के हृदय में निंदा से क्रोध और न प्रशंसा से अभिमान। मैं तो खीझ उठा। हाय री मेरी दुष्टता! मैं तुझे किन शब्दों में अभिशाप दूँ। तुझी ने तो, इतनी बाहरी पराजय दिखाने के बाद भी मुझे नरक के मार्ग पर जाने के लिए विवश किया।

"मैं मन ही मन में ककुसंघ से जल उठा—उससे ईर्ष्या करने लगा। इस बात की प्रतीक्षा में रहने लगा कि कब अवसर मिले,

और कब ककुसंघ से बदला लूं। निदान एक दिन मुझे अवसर मिल ही तो गया। ककुसंघ अपने प्रिय शिष्य विधुर के साथ गांव में भिक्षा के लिए जा रहे थे। मैंने देखा—मेरी आंखें जल उठीं। मैं क्रोध से पागल हो गया। सोचने लगा, किस पर वार करूं? ककुसंघ पर या विधुर पर! नहीं, ककुसंघ पर नहीं, विधुर ही पर! विधुर उसका प्रिय शिष्य है, उसे आहत देखकर उनकी आत्मा को असीम कष्ट होगा!

"बस, फिर क्या था, केवल एक सेकेण्ड की देर लगी। मैंने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया और विधुर के सिर को लक्ष्य करके जोर से फेंक दिया।

"पत्थर का टुकड़ा विधुर के सिर से टकराकर भूमि पर गिर पड़ा। सिर फट गया, रक्त की धारा बह चली। पर वाह, धन्य हैं वे योगी विधुर! उनके मुंह से आह तक न निकली। वह शांति और संतोष के साथ ककुसंघ के अनुवर्ती बने ही रह गये।

"ककुसंघ का अखंड योग जाग उठा। विधुर के सिर पर पत्थर के टुकड़े का आघात! विधुर के न कहने पर भी ककुसंघ जान गये। उन्होंने पीछे फिरकर देखा, रक्त से सना हुआ विधुर! इसके बाद उनकी निगाह मुझ पर पड़ी! मार, मैं उनके केवल अवलोकन मात्र से अपनी जगह से ऐसा खिसका कि फिर मुझे यहां नरक को छोड़कर कहीं भी स्थान नहीं मिला।

"मैं उसी महानरक में अनेक वर्षों तक अपने दुष्कर्मों का फल भोगता रहा। मार! तू भी अज्ञानता न कर! नहीं तुझे भी महानरक का अधिवासी बनना पड़ेगा।"

२०

कुम्हार के घर में गौतम

वह जाति का कुम्हार था। बड़ा तपस्वी और बड़ा भक्त! बौद्ध भिक्षुओं को अपने भगवान् ही के समान मानता। जहाँ किसी भिक्षु को देखता तुरन्त उसके चरणों पर गिरकर उसकी अभ्यर्थना करने लगता। उसकी उस अभ्यर्थना में कितनी श्रद्धा होती, कितनी भक्ति होती, देखने वालों को भी आश्चर्य होता, विस्मय होता।

एक दिन तक्षशिला का राजा, बौद्ध संन्यासी के रूप में कुम्हार के घर गया। उस समय सूरज अस्त हो रहा था—रजनी तम का घूंघट बढ़ाकर संसार में नाचने की तैयारी कर रही थी। बोद्ध संन्यासी ने कुम्हार से कहा—"कुम्हार! मैं आज तुम्हारे घर में विश्राम करना चाहता हूँ।"

बौद्ध भिक्षुओं का प्रेमी, कुम्हार! उसे इसमें आपत्ति ही क्या होती? संन्यासी की बात सुनकर तो उसका हृदय बाँसों उछल गया। उसने आनन्द से विह्वल होकर कहा—"आइये, योगिराज! अहोभाग्य!"

संन्यासी ने कुम्हार के घर में प्रवेश किया। कुम्हार ने अपने को धन्य माना।

उन दिनों गौतम मगध में निवास करते थे। संयोग की बात, उसी दिन वह भी पात्र और चीवर लेकर चारिका के लिए निकल पड़े। राजगृह में जब कुम्हार के दरवाजे पर पहुँचे, तब रात हो गई। गौतम ने कुम्हार से कहा—"भाई! आज मैं तुम्हारे घर पर विश्राम करना चाहता हूँ।"

"महाराज!" कुम्हार ने उत्तर दिया—"मेरे यहाँ, पहले ही से एक संन्यासी आकर ठहरे हुए हैं। यदि उन्हें कोई आपत्ति न

हो तो आप खुशी से मेरे घर में विश्राम कर सकते हैं।"

गौतम चुप रहे। शायद मन में कुछ सोचते रहे, संन्यासी! कौन संन्यासी? क्या बौद्ध भिक्षु? ऐसा कौन भिक्षु है, जो मुझे नहीं जानता, जिसने मुझे न देखा हो? फिर उसे मेरे रहने में आपत्ति ही क्या होगी? गौतम ने संन्यासी के पास जाकर कहा—"मैं भी आज की रात, इस घर में व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरे रहने से आपकी शांति में कुछ बाधा तो न उपस्थित होगी?"

"बाधा!" संन्यासी ने विस्मय के स्वर में उत्तर दिया—"बाधा कैसी महाभाग! आपके रहने से मुझे आनन्द मिलेगा, सुख होगा। आप हर्षपूर्वक यहाँ विश्राम करें!"

गौतम ने संन्यासी के पास ही अपना तृणों का आसन बिछा दिया और उसी पर बैठकर लगे सोचने—संन्यासी? कौन है? यह तो सचमुच मुझे नहीं पहचानता! कौन जाने, बौद्ध भिक्षु है या अन्य मतावलम्बी! गौतम ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"भिक्षु! तू किसके नाम पर संन्यासी हुआ है! तुम्हारा धर्मोपदेशक कौन है!"

"मेरा धर्मोपदेशक!" संन्यासी ने कुछ आश्चर्य और कुछ दर्प के साथ उत्तर दिया—"मेरा धर्मोपदेशक वही है, जिसकी कीर्ति का दमामा जगत के कोने-कोने में बज रहा है। संसार का ऐसा कौन प्राणी है, जिसके कानों में भगवान् गौतम का पवित्र नाम पड़ा हो! मैं उन्हीं पवित्रता के आगार भगवान् गौतम के नाम पर संन्यासी हुआ हूँ, भिक्षु! वही हमारे धर्मोपदेशक भी हैं।"

गौतम अपने ओंठों के बीच मुस्कुराये। संन्यासी की श्रद्धा और भक्ति से उनका हृदय गद्‌गद-सा हो गया। उन्होंने फिर उससे पूछा—"क्या तू बता सकता है भिक्षु, भगवान् गौतम इस

समय कहाँ निवास करते हैं?"

"हाँ," संन्यासी ने उत्तर दिया—"मैंने सुना है, वह इस समय श्रावस्ती नामक नगर में निवास करते हैं!"

"संन्यासी!" गौतम ने कहा—"क्या अपने धर्मोपदेशक भगवान् गौतम का तुमने कभी दर्शन किया है? उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई है?"

"नहीं भिक्षु, कभी नहीं," संन्यासी ने उत्तर दिया—"भगवान् गौतम को मैंने नहीं देखा, उनके दर्शन का मुझे कभी सौभाग्य नहीं हुआ। मैं उन्हें अपने सामने देखकर भी नहीं पहचान सकता।"

"निरपराध संन्यासी! क्या जाने, मैं ही गौतम हूँ! उसकी श्रद्धा और भक्ति तो देखो! उसकी श्रद्धा में कितनी सच्चाई है। उसकी भक्ति में कितनी दृढ़ता है!" गौतम कुछ देर तक सोचकर उसे लगे उपदेश देने। वह गौतम के उपदेशों को इस प्रकार सुनने लगा, मानो उसी का चिर दिनों से भूखा और प्यासा हो!

गौतम की अमृतमयी वाणी, उनका प्रभावशाली उपदेश! संन्यासी के ज्ञान-पट खुल गये—उसके हृदय की आँखें प्रकाश से चमक उठीं। उसका विरागी मन लगा सोचने—ऐसी शांति, ऐसा तेज तो मैंने आज तक किसी की आकृति पर नहीं देखा। वाणी में इतना प्रभाव! बोलते हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो जगत की पीड़ाओं से व्याकुल हृदय पर शांति-सुधा की वृष्टियाँ बरसा रहे हों! तो क्या यही सम्यक्-संबुद्ध भगवान् गौतम हैं! ओह! मैंने बड़ी भूल की। मैंने इन्हें साधारण भिक्षु के नाम से पुकारा!

संन्यासी कुछ देर तक आश्चर्य-सागर में डुबकियाँ लगाता रहा। उसे डूबता-उतराता हुआ देखकर गौतम मुस्कुराये।

उनकी वह मुस्कान ! ओह, उसमें न जाने कौन-सा जादू था, न जाने कौन-सा सम्मोहन-मंत्र था। संन्यासी का सिर अपने आप गौतम के सामने झुक गया। उसने उनके चरणों पर गिरकर कहा— क्षमा करो, भगवन् ! क्षमा करो। मैं आपको नहीं जानता था, नहीं पहचानता था। मैंने आपको साधारण भिक्षु के नाम से सम्बोधित किया ! मेरा यह गुरुतर अपराध !, क्या संसार में इसका भी कोई प्रायश्चित हो सकेगा !

"आकुल न हो भिक्षु !" गौतम ने प्यार से संन्यासी के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"इसमें तो अपराध और क्षमा की कोई बात ही नहीं ! तुमने तो मुझे अनजान में भिक्षु के नाम से पुकारा था न ! फिर आकुल होने की कौन-सी बात !"

संन्यासी गौतम के प्यार को पाकर जैसे कृतकृत्य-सा हो गया ! उसने हाथ जोड़कर गौतम से कहा—"भगवन् ! मुझे अब अपनी शरण में लीजिये। मैं आपकी दीक्षा पाकर अपने को अत्यन्त पुण्यशाली समझूँगा।"

"क्या तुम्हारे पास पात्र और चीवर है संन्यासी।" गौतम ने उत्तर दिया—"बिना पात्र और चीवर के बौद्ध धर्म की दीक्षा की पूर्ति नहीं होगी।"

संन्यासी लाचार हो गया। उसके पास पात्र और चीवर तो था नहीं। वह प्रभात होते ही गौतम को प्रणाम कर पात्र और चीवर की खोज में चल पड़ा। किन्तु एक दिन, इसी खोज में उसे एक पागल गाय ने मार डाला। वह दम तोड़ते समय भी, गौतम की दीक्षा के लिए ललचाता रह गया हो तो आश्चर्य क्या?

भगवान् गौतम कुछ भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठकर उन्हें धर्म का उपदेश दे रहे थे। इसी समय चारिका के लिए निकले हुए दो-चार भिक्षु गौतम के पास गये और उनसे हाथ

जोड़कर कहने लगे—"भगवन् ! तक्षशिला का राजा, जो पात्र और चीवर की खोज में निकला था, मर गया। उसे एक पागल गाय ने मार डाला।"

उसकी मृत्यु का हाल सुनते ही गौतम के मुख से अपने आप निकल पड़ा—"उसे निर्वाण प्राप्त हुआ, उसे मुक्ति मिली !"

उपदेश सुनने के लिए बैठे हुए भिक्षु भी उसकी प्रशंसा करने लगे। क्यों न हो, उस पर गौतम की कृपा थी न !

२१
भूत-भविष्य की चिन्ता न करो

बौद्ध भिक्षु ! उनके निवास-स्थान का ठिकाना ही क्या ? आज यहाँ हैं, कल वहाँ ? भिक्षा-वृत्ति ही उनके जीवन का अवलम्ब, संसार के भूले हुए प्राणियों को ठीक मार्ग पर लाना ही उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण व्यापार ! फिर वे एक स्थान पर क्यों रहने लगे, किसी एक जगह की उनके हृदय से क्यों विशेष ममता होने लगी। उन्हें तो सारा संसार ही एक-सा नज़र आता था।

आयुष्मान् लोमसकंगिय भी एक दिन भिक्षा के लिए पर्यटन करते हुए कपिलवस्तु के न्यग्रोधान्य में जा पहुँचे। सुरम्य वाटिका, शांति मानो वहाँ पत्ते-पत्ते पर झूल रही हो। शांतिप्रिय बौद्ध भिक्षु का मन ही तो ठहरा ! रम गये कुछ दिनों के लिए वहाँ। कपिलवस्तु में भिक्षा के लिए फेरी लगाते और लोगों को धर्म

को उपदेश देते। बस, यही केवल उनका काम था।

रात का समय था। चाँदनी छिटकी थी। ऊपर आकाश में चन्द्रमा, नीचे पृथ्वी ! मानो वह अपनी अमृतमयी किरणों की पिचकारी बनाकर पृथ्वी को चाँदनी के रंग से नहला रहा हो। शांति तो ऐसी थी, मानो उसने इन दोनों के अभिनय के लिए अपने शासन का दंड चला दिया हो। आयुष्मान् लोमसकंगिय, इसी शांति-साम्राज्य में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए उपासना में संलग्न थे।

सहसा लोमसकंगिय की बंद आँखें खुल गईं ! उन्होंने अपने सम्मुख देखा देव-पुत्र चन्दन को। चन्दन ने उन्हें सादर अभिवादन करके कहा—"योगिराज ! क्या आप अकेले एकान्त में सुख से रहने की विधि जानते हैं ?"

"नहीं, मुझे उसकी विधि याद नहीं है देवता !" लोमसकंगिय ने उत्तर दिया—"क्या तुम्हें याद है देवता ?"

"नहीं भिक्षु !" देवता ने कहा—"मुझे भी उसकी विधि याद नहीं। हाँ, क्या तुम्हें अकेले, एकान्त में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की गाथाएँ याद हैं ?"

"नहीं देवता !" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मुझे वह भी याद नहीं ! क्या तुम्हें याद है ?"

"हाँ, मुझे याद हैं भिक्षु !" देवता ने कहा।

"तुमने इन गाथाओं को कैसे याद किया देवता !" भिक्षु ने पूछा—"उन्हें तुमने कब और कहाँ किससे सुना था ?"

देवता भिक्षु की ओर देखकर पहले तो हँसा, फिर श्रद्धापूर्वक कहने लगा—"भिक्षु ! बहुत दिनों की बात है। उस समय भगवान् त्रयस्त्रिंश पारिछत्रक वृक्ष के नीचे पाण्डुकंबल नामक शिला पर बैठे थे। देवताओं ने उनके सम्मुख जाकर निवेदन किया—भगवन् ! हम लोगों को अकेले, एकान्त में स्वेच्छा से

अपने में अनुरक्त रहने की विधि बतला दीजिये।

"भगवान् ने देवताओं की ओर देखा। उन्हें सचमुच देवताओं की आँखों में उत्सुकता की भावना जान पड़ी। बस, उसी पर रीझ गये और लगे देवताओं को अपने सामने बैठाकर उन्हें उपदेश देने। उन्होंने कहा—अतीत के पीछे न दौड़ो। भविष्य की चिन्ता न करो। जो अतीत है, वह तो बीत गया और भविष्य अभी *आया नहीं*। इसलिए *वर्तमान ही में संलग्न होना श्रेष्ठ* धर्म है, सदैव कर्तव्य में रत रहो। कौन जाने कब मृत्यु हो जाये। चित्त को आलस और उदासीनता से मुक्त रखो। बस, इसी को श्रेष्ठ लोग एकान्त में, स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि कहते है।

"इसी तरह भिक्षु ! मैंने भगवान् से ये गाथाएँ सीखीं। तुम भी इन्हें सीखो। इनसे ब्रह्मचर्य परिपालन में बड़ी सहायता मिलती है।"

देवता अपनी बात समाप्त करके वहीं अदृश्य हो गया। भिक्षु जैसे अवाक्-सा हो गया। उसकी समझ में कुछ आया और कुछ नहीं आया। फिर अब वह क्या करे ? किसके पास जाकर अपनी शंकाओं का समाधान करे। उसके धर्मोपदेशक भगवान् गौतम ! फिर देर क्यों ? उसने प्रभात होते ही पात्र और चीवर उठाकर श्रावस्ती की राह ली।

श्रावस्ती में अनाथपिंडक की जेतवन की सुरम्य वाटिका ! उन दिनों गौतम वहीं निवास करते थे। भिक्षु ने उनके पास जाकर उन्हें अभिवादन किया। भगवान् ने उसे बैठने का संकेत करते हुए कहा—"क्या है भिक्षु ! कहाँ चले ? कोई नई बात तो नहीं हुई ?"

"केवल भगवान् का दर्शन करने।" भिक्षु ने उत्तर दिया—"अपने संदिग्ध और अशांत हृदय की व्याकुलता को दूर करने।

क्या मैं इस समय भगवान् से कुछ पूछ सकता हूँ !"

"क्यों नहीं भिक्षु !" गौतम ने उत्तर दिया—"जो पूछना चाहते हो, हर्षपूर्वक पूछो।"

"भगवन् !" भिक्षु ने कहा—"मैं उन दिनों कपिलवस्तु के न्यग्रोधान्य में निवास करता था। एक दिन रात के समय एक देवपुत्र मेरे पास आया। उसने मुझसे पूछा—क्या तुम्हें एकांत में अनुरक्त रहने की विधि याद है ? मैंने कहा—नहीं। फिर उसने कहा—क्या तुम्हें अकेले में अनुरक्त रहने की गाथाएँ याद हैं ? मैंने कहा—नहीं। इसके बाद मैंने उससे पूछा—क्या तुम्हें याद हैं ? उसने 'हाँ' कहकर मुझे गाथाएँ सुना दीं। उसने यह भी कहा कि इन्हें तुम भी सीखो। इसलिए भगवन्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उन गाथाओं को मुझे अच्छी तरह बता दें।"

भिक्षु की बात समाप्त हो जाने पर गौतम ने कहा—"भिक्षु ! क्या तू उस देवपुत्र को जानता है ?"

"नहीं भगवन् !" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैं उस देवपुत्र को बिल्कुल नहीं जानता। भगवन् ! हम लोगों को अकेले, एकांत में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि बतला दीजिये।"

भगवान् ने देवताओं की ओर देखा। उन्हें सचमुच देवताओं की आँखों में उत्सुकता की भावना जान पड़ी। बस, उसी पर रीझ गये और लगे देवताओं को अपने सामने बैठाकर उन्हें उपदेश देने। उन्होंने कहा—"अतीत के पीछे न दौड़ो। भविष्य की चिन्ता न करो। जो अतीत है, वह तो बीत गया और भविष्य अभी आया नहीं। इसलिए वर्तमान ही में संलग्न होना श्रेष्ठ धर्म है, सदैव कर्तव्य में रत रहो। कौन जाने कब मृत्यु हो जाये। चित्त को आलस और उदासीनता से मुक्त रक्खो। बस, इसी को श्रेष्ठ लोग एकांत में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि कहते हैं।

ब्रह्मचर्य-पालन

वह एक भिक्षु था। उसका नाम भूमिज था। पहले वह कभी भूमिपति अवश्य था, पर अब तो संन्यास ही उसका जीवन, भिक्षाचार ही उसके जीवन का व्यापार। प्रतिदिन प्रात.काल होते ही पात्र और चीवर लेकर निकल जाता। भिक्षाचार करता, लोगों को उपदेश देता और फिर विश्राम करने के लिए किसी वृक्ष के नीचे टिक जाता। भिक्षुओं का यह शान्तिमय जीवन उस समय कितना प्यारा था, कितना सुन्दर था!

एक दिन भूमिज भिक्षाचार के लिए पर्यटन करता हुआ राजकुमार जयसेन के घर जा पहुँचा। राजकुमार ने भिक्षु का स्वागत किया—उसकी अभ्यर्थना की। स्वागत-अभ्यर्थना के पश्चात् राजकुमार ने भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! बहुत से श्रमण फल की आशा से ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो क्या वह फल पाने के अयोग्य हैं! आपके उपदेशक गौतम भगवान् का इस सम्बन्ध में क्या मत है?"

"राजकुमार!" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैंने इस सम्बन्ध में भगवान् के मुँह से कभी कोई बात नही सुनी। मगर मेरा विश्वास है कि गौतम भगवान् इस सम्बन्ध में यही कहेंगे कि जो लोग फल की आशा करके बिना कार्य-कारण का ध्यान किये ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, वे फल पाने के अयोग्य हैं। इसके प्रतिकूल जो लोग फल की आशा करके भी, ब्रह्मचर्य पालन में कार्य-कारण का ध्यान रखते हैं, वे फल पाने के योग्य हैं।"

"यदि!" राजकुमार ने कहा—"धर्मोपदेशक गौतम का इस सम्बन्ध में यही मत है, तब तो मैं कहूँगा कि दूसरे मतावलम्बी

इस सम्बन्ध में बौद्धों को मात कर देंगे।"

भिक्षु कुछ खीझा, कुछ झिझका। उसे राजकुमार की बात कुछ कटु-सी लगी। पर विवश, लाचार! एक तो बौद्ध भिक्षु, दूसरे जयसेन राजकुमार! भिक्षु, उसका बिगाड़ ही क्या सकता था? भोजन करने के पश्चात् भिक्षु वहाँ से राजगृह की कलन्दक वाटिका की ओर चला।

उन दिनों गौतम उसी वाटिका में निवास करते थे। भिक्षु उनके पास गया और उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक वह ध्यानमग्न गौतम की ओर देखता रहा। शायद इस अभिप्राय से कि गौतम स्वयं अपनी आंखें खोलें और कुछ पूछें। मगर लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी निराशा! बेचारे को स्वयं जुबान खोलनी पड़ी। उसने सविनीत स्वर में अपना और जयसेन का वार्तालाप गौतम को सुनाकर कहा—"भगवन्! मैं आपके पास जयसेन के प्रश्नों का उचित उत्तर समझने आया हूं! क्या यह अनुचित तो नहीं है? मेरा यह कार्य कहीं धर्म के विरुद्ध तो नहीं हो जाता?"

"नहीं भिक्षु!" गौतम ने उत्तर दिया—"तुम बिलकुल उचित रास्ते पर हो। तुमने जयसेन के प्रश्नों का उत्तर मुझसे पूछकर कुछ भी अधार्मिक कार्य नहीं किया है। ध्यान देकर सुनो, मैं तुम्हें उसके प्रश्नों का उत्तर विशद रूप से समझा रहा हूँ...।"

"जो श्रमण मिथ्याचरण करने वाले हैं, यदि वे फल की आशा करके भी ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो वे फल पाने के अयोग्य है।

"जैसे, मान लो किसी आदमी को तेल की जरूरत हो। मगर वह कोल्हू में तिल या सरसों न डालकर, उसमें बालू डाल दे और तो उसमें पानी का छींटा देकर उससे तेल निकालने की कोशिश करे क्या कभी उसे तेल मिल सकता है? यह भी न सही, मान लो,

किसी आदमी को दूध की आवश्यकता है। वह हाथ में मेटुकी लेकर घर से बाहर निकला! संयोग की बात, रास्ते में उसे एक तरुण-वत्सा गाय मिल गई। वह लगा उसी के सींग पकड़कर उसका दूध दुहने। तो क्या उसे कभी दूध मिल सकता है? इसके प्रतिकूल जो आदमी कोल्हू में तिल-सरसों डालकर उसे पेरेगा, उसे तेल मिलेगा और जो तरुण-वत्सा गाय के स्तन से दूध दुहेगा, उसे दूध भी मिलेगा। इसी तरह जो श्रमण सदाचरणरत हैं, यदि वे फल की आशा से भी ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो वे फल पाने के योग्य हैं।"

भिक्षु! आश्चर्य-चकित होकर गौतम के मुख की ओर देखने लगा। देखने ही नहीं लगा, बल्कि उनके चरणों में श्रद्धा से मस्तक झुकाकर कहने भी लगा—"भगवन्! मुझे दुःख है कि आपके ये विचार मुझे पहले नही मालूम थे। नहीं तो जयसेन की बातों का उत्तर देकर मैं अपने को बहुत कुछ कृतकृत्य कर लेता!"

"हाँ भिक्षु!" गौतम ने कहा—"यदि तुम इन तर्कों को जयसेन के सामने रखते तो इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रसन्न होता और इस उपलक्ष्य में तुम्हारी अधिक अभ्यर्थना भी करता।"

मगर अब होता क्या है? भिक्षु अपनी कमजोरी पर मन ही मन पछताता हुआ गौतम को प्रणाम कर चला गया। किसी ने सच ही कहा है कि मनुष्य को निरन्तर प्रयास के द्वारा अपनी कमजोरियाँ दूर करते रहना चाहिए।

त्यागमय जीवन

उन दिनों भिक्षुओं में आयुष्मान् वक्कुल का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हो चला था। जिसको देखिये, वही वक्कुल की गुण-गाथा गा रहा है। जिसको देखिये, वही उनकी कीर्ति-कहानी लोगों के कानों में डाल रहा है। दिशायें कीर्ति से गूंज उठीं, कोना-कोना यश के महानिनाद से प्रतिध्वनित-सा हो उठा। क्यों न हो, शक्ति-संपन्न योगी थे न!

एक दिन नंगे काश्यप के कानों में भी बक्कुल की कीर्ति की आवाज पड़ी वह उनका बालमित्र था, छुटपन का साथी था। उसे वक्कुल की कीर्ति-कहानी सुनकर आश्चर्य हुआ। वह अपने मन में सोचने लगा—वक्कुल! कौन बक्कुल? वही, जिसके साथ लड़कपन में मैं क्रीड़ा किया करता था, वही जिसे मैं बात-बात में पछाड़ा करता था। इतना मेधावी कब से बन गया वह? झूठ है, सरासर झूठ है! उसने योगी बनने का ढोंग रचा होगा। पर उसका ढोंग सफल होगा मेरे सामने। नहीं, हरगिज नहीं। मुझे तो उसकी एक-एक बात मालूम है। वह मुझे देखते ही अवश्य लज्जित हो जायेगा।

अभिमानी काश्यप! उसके इन विचारों ने उसे और अधिक अभिमानी बना दिया। वह अपने घर से बक्कुल की परीक्षा लेने के लिए निकल पड़ा। परीक्षा लेने के लिए वह इतना उतावला हो रहा था कि जब तक वह बक्कुल के पास नहीं पहुँचा, उसका एक-एक क्षण प्रलय ही के समान व्यतीत होता था।

उन दिनों बक्कुल राजगृह के वेणुवन में निवास करते थे। नंगा काश्यप उनके पास जाकर, उन्हें अभिवादन कर एक ओर

बैठ गया। कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा। शायद अवसर की प्रतीक्षा में रहा हो या शायद उसका साहस ही उसे जवाब देता रहा हो। चाहे जो हो, पर थोड़ी देर के बाद उसने वक्कुल से पूछा—"श्रेष्ठ, आप कितने दिनों से संन्यासी हुए हैं ?"

"मैं काश्यप !" वक्कुल ने उत्तर दिया—"मुझे तो संन्यास लिये हुए करीब अस्सी वर्ष हो गये।"

"इस लम्बे समय में" काश्यप ने कहा—"आपने कितनी बार काम की उपासना में अपने को उसके चरणों पर वलि बनाकर चढ़ाया !"

"यह तुम क्या कह रहे हो काश्यप !" वक्कुल ने उत्तर दिया—"क्या तुम मुझे नही जानते ? क्या तुम मेरे अखंड ब्रह्मचर्य से विलकुल ही अपरिचित हो ? मेरे सम्बन्ध में यह पूछना कि मैंने इस लम्बे समय में कितनी बार स्वयं को काम का शिकार बनाया, बिलकुल लज्जाजनक बात होगी। हाँ, यह तुम अवश्य पूछ सकते हो कि इस लम्बी अवधि में मेरे मन में एक बार भी कामेच्छा जागृत हुई या नहीं।"

काश्यप तो जैसे चकरा-सा गया। उसके कानों को सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर दूसरी बार जोर देकर पूछा—"क्या कहते हो, वक्कुल ? एक बार भी कामेच्छा जागृत हुई या नहीं ?"

"हाँ, ठीक कहता हूँ काश्यप !" वक्कुल ने उत्तर दिया—"तुम्हें मुझसे यह पूछना चाहिए कि इस लंबी अवधि में मुझे एक बार भी कामेच्छा हुई या नही।"

काश्यप चुप रहा। मानो बक्कुल की प्रभावशाली बातों से उसका हृदय दब गया हो।

काश्यप को मौन देखकर बक्कुल पुनः कहने लगे—"काश्यप ! विस्मय में पड़ने की कोई बाप नही। अगर तुम मेरे

सम्बन्ध में जानने को उत्सुक हो तो ध्यान से सुनो, मैं अपने इतने दिनों के जीवन की डायरी तुम्हें सुना रहा हूँ। मैंने कभी कोई हिंसा नही की। हिंसा करने को कौन कहे, किसी को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं पहुँचाया। कभी काम की तर्कना तक भी न की। सदैव अपने विचारों में स्थिर रहा। मन को, संयम की डोरी से कसकर बाँधे रहा।

कभी गृहपतियों का दिया हुआ नवीन वस्त्र अपने कन्धे पर नहीं रक्खा। हमेशा कूड़ा-करकट में फेंके हुए चिथड़ों से ही काम चलाता रहा। कभी कैंची से अपने चीवर को न काटा और न सुई से उसे सिया।

मैंने कभी किसी के घर जाकर निमंत्रण नहीं खाया। किसी के घर के भीतर जाकर कभी भोजन नही किया। किसी भिक्षुणी को न तो कभी उपदेश दिया और न उसके संसर्ग में रहा। कभी गुरु बनने की कोशिश नहीं की। शय्या पर कभी नहीं सोया। वर्षा ऋतु में भी जंगलों में रहा। कभी किसी रोग ने मुझे सताया नहीं, रोग के पंजों से में सदैव मुक्त रहा।

वक्कुल का ऐसा त्यागमय जीवन! फिर क्यों नही संसार में उनकी कीर्ति का डंका वजे! काश्यप का मस्तक अपने आप वक्कुल के चरणों में झुक पड़ा। उसने हाथ जोड़कर वक्कुल से कहा—"योगिराज! आपका सचमुच अद्‌भुत प्रभाव है। कृपा कर मुझे अपनी शरण में लीजिये।"

वक्कुल काश्यप को बौद्ध धर्म में दीक्षित करके दूसरे स्थान में चले गये। कुछ दिनों के बाद लोगों के कानों में यह आवाज पड़ी कि आयुष्मान् वक्कुल को इस शरीर ही में निर्वाण प्राप्त हो गया। क्यों न हो, उनके त्यागी जीवन का अद्‌भुत प्रभाव ठहरा!

बुद्ध कैसे उत्पन्न होते हैं

श्रावस्ती की उपस्थानशाला ! 'उसमें सहस्रों भिक्षु निवास करते थे। सब एकसाथ भोजन करते, एकसाथ चारिका के लिए निकलते। ऐसा प्रेम, ऐसी शांति ! ! ऐसा ज्ञात होता मानो जगत् का सारा प्रेम, जगत् की सारी शांति इसी उपस्थानशाला में आकर निवास करती है। क्यों न हो, बौद्ध भिक्षु और उनका आदर्श जीवन ! प्रेम और शान्ति ही तो उनके जीवन की दो प्रमुख धाराएँ है।

एक दिन सभी भिक्षु भोजन करने के पश्चात् उपस्थानशाला में बैठकर बातें करने लगे—"भगवान् गौतम ! अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। सब धर्मों को जानते है, अखण्ड योग के साधक हैं। उनके योग की शक्तियाँ ! उन पर सारा ब्रह्माण्ड भी अपने को बलिहार जाता है।"

भिक्षुओं की बात सुनकर आनन्द ने कहा—"हाँ भिक्षुओ, सचमुच गौतम भगवान् ऐसे ही हैं। वे वास्तव में अद्भुत धर्म को जानने वाले हैं।"

उन दिनों भगवान् गौतम श्रावस्ती की जेतवन वाटिका में निवास करते थे। जिस समय उपस्थानशाला में भिक्षुओं में परस्पर संभाषण हो रहा था, गौतम भगवान् भी पात्र और चीवर लेकर वहीं जा पहुंचे। भिक्षुओं ने एक ही साथ खड़े होकर गौतम का स्वागत किया। उनके स्वागत करने का ढंग ! उसमें श्रद्धा और भक्ति का बड़ा अच्छा पुट था।

गौतम ने बिछे हुए आसन पर बैठकर भिक्षुओं की ओर देखा। सभी के मुख पर एक अद्भुत आभा झलक रही थी। सब

[illegible]

गौतम की ओर ऐसी श्रद्धामयी दृष्टि से देख रहे थे, मानो कोई अपने भगवान् ही की ओर देख रहा हो। गौतम ने कुछ देर तक मौन रहने के बाद भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ, तुम लोग यहाँ बैठे हुए आपस में क्या बात कर रहे थे?"

'भगवन्!" आनन्द ने उत्तर दिया—"हम लोग भोजन करने के पश्चात् एकसाथ उपस्थानशाला में बैठे हुए थे। सहसा स्वयं भगवान् ही की बात चल पड़ी। भगवान् सब धर्मों के परिज्ञाता हैं, उनमें अद्भुत शक्ति है, उनमें अद्भुत तेज है। इस समय तो हम लोगों में यही बात हो रही थी भगवन्!"

"आनन्द!" गौतम ने कहा—"यदि तुम लोग बोधिसत्व के अद्भुत कर्मों को जानना चाहते हो तो सुनो। मैं बोधिसत्व के उत्पन्न होने की कथा तुम लोगों को सुना रहा हूँ।" गौतम कहने लगे—

"आनन्द! सर्वशक्तियों से सम्पन्न बोधिसत्व तुषित लोक में निवास करते हैं। वहीं वह अपनी आयु भर रहते हैं। जब उनकी आयु खतम हो गई, तब वह वहाँ से च्युत होकर मृत्यु लोक में अपनी माता के गर्भ में आये। जिस समय उनका माता के गर्भ में प्रवेश हुआ, उस समय जगत् में अद्भुत प्रकाश फैला। ऐसा प्रकाश कि उसे देखकर सूर्य और चन्द्र की किरणें भी लज्जित हो जाती हैं।

"जब तक बोधिसत्व माता के गर्भ में रहते हैं, चार देवपुत्र उनकी रक्षा करने के लिए नियत रहते हैं। कोई मनुष्य या कोई राक्षस बोधिसत्व को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये, इसका वे सदैव ध्यान रखते हैं।

"गर्भ के समय बोधिसत्व की माता अत्यंत शीलवती होती है। वह न हिंसा करती है और न चोरी। उनका मन न व्यभिचार की ओर जाता है और न वह कभी सुरा ही पान करती है। भोग की इच्छा तो उसके हृदय में कभी उत्पन्न ही नहीं होती। वह सदैव

प्रसन्न और संतुष्ट रहती है। वह न कभी उदासीन होती है और न उस पर कभी किसी रोग का आक्रमण ही होता है। उसकी आँखों में चेतना और ज्ञान का इतना प्रकाश भर जाता है कि वह गर्भ में स्थित वोधिसत्व को भी अपनी इच्छा से देखा करती है। उसका हृदय इतना निर्मल और इतना पवित्र हो जाता है कि वह उस समय भूत-भविष्य की अच्छी परिज्ञाता भी वन जाती है।

"वोधिसत्व की माता प्रसव के एक ही सप्ताह वाद मर कर तुषित लोक में चली जाती है। वह अन्यान्य स्त्रियों की भाँति बैठ या लेटकर प्रसव नहीं करती। वह खड़े होकर वोधिसत्व को जनती है। वोधिसत्व के पैदा होने के समय चार देवपुत्र उनके आस-पास खड़े रहते हैं। वही उन्हें पृथ्वी पर गिरने के पहले अपनी गोद में स्थान देते हैं और वोधिसत्व की माता से कहते हैं—लो देवि! प्रसन्नतापूर्वक वच्चे को ग्रहण करो। तुम्हारा अहोभाग्य! तुम्हारी कुक्षि से वोधिसत्व ने जन्म लिया।

"वोधिसत्व जव बालक रूप में उत्पन्न होते हैं, तव उनका शरीर रुधिर में नहीं सना होता। वह मणिरत्न-जटित काशी के वस्त्र में लपेटा रहता है। जानते हो आनन्द, ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि माता-पुत्र दोनों की आत्माएँ अत्यन्त निर्मल और परिशुद्ध होती हैं। वोधिसत्व के पैदा होने ही के साथ जल की दो पवित्र धाराएँ आप ही आप पृथ्वी से फूट निकलती हैं। एक गर्म जल की धारा और दूसरी शीतल जल की धारा। माता-पुत्र दोनों जल की इन्हीं धाराओं में पवित्र होते हैं।

"सद्यजात वोधिसत्व अपने पैर को पृथ्वी पर रखकर उत्तराभिमुख सात कदम चलते है और यह कहते है कि मैं श्रेष्ठ हूँ। मेरा संसार में यह अंतिम जन्म है। मैं अव जन्म-मरण के वंधन से मुक्त हो जाऊँगा।"

आनन्द समस्त भिक्षुओं के साथ वोधिसत्व के जन्म की

कहानी सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा। उसने समस्त भिक्षुओं के साथ गौतम के चरणों में सिर झुकाकर कहा—"फिर क्यों न आप अद्भुत धर्मों के परिज्ञाता हों भगवन्! आप भी तो बोधिसत्व ही हैं न!"

२५
गौतम और चंकि

ओपसाद धन-धान्यपूर्ण कस्बा था। उसका अधिपति एक ब्राह्मण था। उसका नाम चंकि था। कोशलाधिपति राजा प्रसेनजित् ने उसे यह कस्बा दान में प्रदान किया था! उसमें अधिकतर ब्राह्मण ही निवास भी करते थे। सभी वेदों के परिज्ञाता, शास्त्रों के पंडित! केवल पढ़ना-पढ़ाना ही काम और कुछ नहीं। न भोजन की चिन्ता, न वस्त्र का अभाव। राजा प्रसेनजित् ने सबको इस ओर से संतुष्ट-सा बना दिया।

एक दिन ओपसाद-वासी ब्राह्मणों के कानों में आवाज पड़ी—शाक्य पुत्र गौतम ओपसाद ही के पास शालवन में निवास कर रहे हैं। बस क्या था, ब्राह्मण गृहपतियों की श्रद्धा और भक्ति नाच उठी। कौन जाने, श्रमण गौतम का दर्शन इस जीवन में कभी हो या न हो। उनका पवित्र दर्शन! ओह, उसके लिए तो आज समस्त भारत के निवासी तक तरस रहे हैं। फिर इसे ओपसाद-वासी ब्राह्मणों का सौभाग्य ही समझना चाहिए। ओपसाद के समीपस्थ शालवन में गौतम का निवास है। सचमुच ओपसाद

वालों के पुण्य जागृत हो उठें हैं।

जिसको देखिये, उसी के मुख पर ये शब्द ! जिस ओर सुनिये, उसी ओर गौतम की कीर्ति की मंगलमयी आवाज़ ! ब्राह्मण गृहपति, जैसे श्रद्धा और भक्ति की साक्षात् मूर्ति से बन गये थे। सब के सब झुंड के झुंड में चले शालवन की ओर गौतम के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाने। भक्ति के उन्माद में पागल मनुष्यों का वह दल। ओह ! कुछ कहा नहीं जाता ? मानो सबने भक्ति ही का उन्मादक रस तैयार कर उसे अपने गले के नीचे उतार लिया हो।

ओपसाद का अधिपति, ब्राह्मण चंकि उस समय अपने मकान के ऊपरी खंड पर टहल रहा था ! सहसा उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठ गई। उसने देखा, आकाश पर धूल ! शीघ्र मंत्री को बुलाकर उसने पूछा—मंत्री, 'जब कि मौसम साफ है, तूफान का कही कोई लक्षण नही, फिर आज आकाश में यह धूल उड़ती हुई क्यों दिखाई दे रही है।

"महाराज !" मंत्री ने निवेदन किया—"ओपसाद के समीपस्थ शालवन में श्रमण गौतम आये है। ओपसाद के समस्त गृहपति ब्राह्मण उन्ही के दर्शन के लिए जा रहे हैं। उन्हीं के पैरों की उठी हुई धूल आकाश में दिखाई दे रही है महाराज !"

ब्राह्मण कुछ देर तक मौन रहा, मन ही मन न जाने क्या-क्या सोचता रहा। फिर उसने मंत्री से कहा—"मंत्री, फौरन ब्राह्मण गृहपतियों के पास जाओ, उन्हें रोककर कहो—कुछ देर तक आप लोग ठहरें। आप लोगों ही के साथ चंकि-अधिपति भी गौतम भगवान् का दर्शन करने चलेंगे।"

कुछ ही देर के बाद समस्त नगर में यह खबर फैल गई। जिसको देखिये वही कह रहा है, चंकि-अधिपति भी गौतम का दर्शन करने जा रहे है ! कुछ लोगों को इस खबर से आश्चर्य हुआ

और कुछ लोगों ने चंकि की प्रशंसा की।

उस समय विभिन्न देशों से आये हुए पाँच सौ विद्वान ब्राह्मण ओपसाद में निवास करते थे। उन सबों के कानों में भी यह आवाज पड़ी। सब एक ही साथ कह उठे—चंकि-अधिपति, गौतम का दर्शन करने जा रहे हैं। आश्चर्य है, ऐसा कभी नहीं हो सकता। हम लोग कभी इसे अपनी आँखों से देख नहीं सकते।

फिर देर क्यों? सब ब्राह्मण एकसाथ मिलकर चंकि के पास गये और उससे विनीत स्वर में कहने लगे—क्या आप सचमुच श्रमण गौतम के दर्शनार्थ शालवन में जा रहे हैं।

"हाँ बंधुओ!" चंकि ने उत्तर दिया—"मेरी आत्मा मुझे भी यह आदेश दे रही है कि मैं भी श्रमण गौतम के दर्शनार्थ शालवन में जाऊँ।"

"यह ठीक नही है महाराज!" ब्राह्मणों ने कहा—"आपको श्रमण गौतम के दर्शनार्थ नहीं जाना चाहिए। आप प्रतिष्ठित है, कुलपति है। आपने पूज्य वंश में जन्म लिया है। आपको बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है। इसलिए आपका गौतम के पास जाना उचित नहीं! गौतम को स्वयं आपके पास आना चाहिए।"

"नहीं बधुओ!" चंकि ने उत्तर दिया—यह ठीक नहीं, गौतम को मेरे पास नहीं आना चाहिए, वल्कि मुझे ही उनके पास चलना चाहिए। वह महर्षि हैं, योगी हैं। उन्होंने संसार के अमूल्य वैभवों का त्याग किया है। उनके त्याग के प्रभाव को देवताओं तक ने स्वीकार किया है। ऐसा अद्भुत महापुरुष मेरे राज की सीमा में आये और मैं उनके दर्शनार्थ न जाऊँ, यह एक विचित्र बात होगी। वह इस समय हमारे अतिथि है, हम लोगों को हृदय से उनका सत्कार करना चाहिए। चलो तुम लोग भी मेरे साथ भगवान् गौतम का दर्शन करने।"

चंकि नगर का अधिपति! उनके शासन में वहाँ की एक-एक इंच भूमि का एक-एक प्राणी! फिर उसकी आज्ञा को टाल कौन सकता था? सब ब्राह्मण चंकि के साथ ही साथ शालवन की ओर चलने के लिए तैयार हो गये।

शालवन का एक घिरा हुआ भाग था। गौतम एक वृक्ष के नीचे कुछ वृद्ध ब्राह्मणों के साथ बैठे हुए बात कर रहे थे। उनमें एक युवक ब्राह्मण भी था। उसका नाम कापथिक था। वह वेदों का ज्ञाता और शास्त्रों का महान् पंडित था। जब गौतम वृद्ध ब्राह्मणों से ज्ञात करने लगते थे, तब बीच-बीच में बोल उठता था।

इसी समय चंकि ब्राह्मणों के साथ वहाँ आ पहुंचा। वह सबके साथ ही गौतम को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। गौतम वृद्ध ब्राह्मणों से बातचीत करने में लगे हुए थे। युवक कापथिक को यह असह्य-सा हो रहा था। वह अपने वेदों के ज्ञान में भूला हुआ इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब अवसर मिले और गौतम से संभाषण कर उन्हें पराजित करूँ? वह इसी विचार से कभी-कभी गौतम को छेड़ देता था। उसकी बार-बार की यह धृष्टता गौतम को भी बुरी लगी। उन्होंने कापथिक की ओर देखकर कहा—कापथिक! बातचीत में बाधा न उपस्थित करो।

कापथिक चुप हो गया। गौतम की तेजस्विनी आँखों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह सहम गया। उसे सहमा हुआ देखकर ब्राह्मण अधिपति चंकि तुरंत बोल उठा—"कापथिक को विवाद में भाग लेने से न रोकिये भगवन्! वह विद्वान है, कुलीन है, सुवक्ता है, पंडित है। वह भगवान् गौतम के साथ विवाद भी कर सकता है।"

कापथिक का साहस फिर बढ़ा, उसकी नसों में फिर जोश का सागर लहराने लगा। वह गौतम को पराजित करने के लिए

उन्हीं के सामने डटकर बैठ गया। गौतम ने भी उसकी ओर आँखें फेरीं, वह लगा गौतम से प्रश्न करने। उसके प्रश्नों के उत्तर गौतम इस प्रकार देने लगे मानो कोई चतुर शिक्षक किसी विद्यार्थी को पढ़ा रहा हो।

कुछ देर के बाद कापथिक के प्रश्न खतम हो गये। गौतम ने ब्राह्मण अधिपति चंकि की ओर देखकर कहा—"क्यों, अब तो शायद कापथिक के भडार में कुछ भी शेष नहीं। फिर क्या, तुम उसे चारा-पानी न चुगाओगे।"

चंकि लज्जित हुआ, शरमाया। कापथिक की लज्जा की तो कोई सीमा ही नहीं थी। गौतम के दैवी प्रभाव ने ऐसा सबको विमोहित किया कि सब का मस्तक एक ही साथ गौतम के चरणों पर झुक पड़ा। इतना ही नहीं, सबने एक ही साथ एक ही स्वर में कहा—गौतम भगवान्! आप सम्यक्-संबुद्ध हैं।

गौतम के प्रभाव की यह लीला, किस दैवी चमत्कार से कम है!

२६

घोटमुख

ब्राह्मण घोटमुख! उसके अभिमान की तो कुछ बात ही न पूछो। सदैव दर्प का प्याला गले के नीचे उतारे रहता। किसी भिक्षु को देखता तो तुरन्त उसके साथ विवाद करने लगता। विवाद सार्थक हो या निरर्थक—केवल भिक्षु को परेशान करने से काम।

अभिमानी था न! अभिमानी मनुष्य किसी को सीधे रास्ते पर जाता हुआ भी नहीं देख सकते। अवगुण की माया ही तो है।

एक दिन घोटमुख किसी काम से काशी गया हुआ था। वहीं उसके कानों में आवाज पड़ी—"आयुष्मान् उदयन आजकल काशी के खेमिय आम्रवन में निवास करते हैं।" बस, क्या था? उसके अभिमान की प्रवृत्ति जाग उठी। वह अपने मन में सोचने लगा—काशी नगरी में बौद्ध भिक्षु! यहाँ तो वेदों और शास्त्रों के सुज्ञाता ब्राह्मणों का राज है। फिर उसने किस साहस से इस ब्राह्मण नगरी में कदम रक्खा। घोटमुख तो इसे सहन नहीं कर सकेगा। काशी ब्राह्मणों की है, बौद्ध भिक्षुओं की नहीं। घोटमुख अवश्य उसकी रक्षा करेगा, अवश्य वह उदयन को यहाँ आने का स्वाद चखायेगा।

अभिमानी घोटमुख! वह फिर उदयन के पास जाने में देर क्यों करे? वह उदयन के खेमिय आम्रवन में गया। उस समय उदयन एक स्वच्छन्द वायु वाले मैदान में धीरे-धीरे टहल रहे थे। घोटमुख उन्हें प्रणाम कर स्वयं भी उनके पीछे टहलने लगा। कुछ देर के बाद अभिमानी घोटमुख आखिर बोल ही तो उठा—"उदयन! मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो संन्यास धर्ममय नहीं है।"

उदयन चुप रहे। टहलने के चबूतरे से नीचे उतरकर अपनी कोठरी में जाकर आसन पर बैठ गये। एक ओर आसन खाली था। पर घोटमुख उस पर न बैठा, खड़ा ही रहा। अपने मन में सोचने लगा—न, मैं बिना उदयन की प्रार्थना के आसन पर न बैठूंगा। हमारे ऐसा सुपात्र ब्राह्मण और बिना प्रार्थना के आसन पर बैठ जाय, यह तो कभी नहीं हो सकता।

उदयन ने उसके मन की प्रवृत्ति जानकर कहा—"बैठ जाओ घोटमुख! खड़े क्यों हो, आसन तो तुम्हारे सामने ही बिछा है।"

घोटमुख आसन पर बैठ गया। उदयन ने कहा—"देखो, मैं तुम्हारी शंका का समाधान कर रहा हूँ। तुम मेरी जिस बात को न समझो उसे मुझसे पूछ लेना। जो तुम्हें अनुचित जान पड़े, उसका स्वतन्त्रतापूर्वक खण्डन भी करना।"

घोटमुख ने उत्तर के रूप में कहा—"ऐसा ही करूँगा उदयन!"

उदयन घोटमुख की शंकाओं का समाधान करने लगे। उसने एक नहीं, सैकड़ों बातें उदयन से पूछीं। पर अभिमानी प्रवृत्ति सात्विक वृत्ति के सामने कब ठहर सकती थी! आखिर उसे पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। घोटमुख ने उदयन के सामने सिर झुकाकर कहा—"उदयन! आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं अंधकार से प्रकाश में आ गया। धर्म, अधर्म को परखने लगा, सत्य और असत्य को जानने लगा। इसलिए आपसे अंजलिबद्ध प्रार्थना है कि आप मुझे अपनी शरण में ले लें। इससे मेरा जीवन सफल हो जायगा, मैं अपने को कृतकृत्य मानूँगा।"

"ब्राह्मण!" उदयन ने उत्तर दिया—"मेरी शरण में आने से तुम्हारा कुछ भी कल्याण न होगा। तुम उन्हीं गौतम भगवान् की शरण में जाओ, जिनकी छत्रछाया में मैं शान्ति का उपभोग कर रहा हूँ।"

"अच्छा उदयन!" ब्राह्मण घोटमुख ने कहा—"मैं भगवान् गौतम की शरण में जाता हूँ। आज से भिक्षु संघ की सेवा मेरा धर्म और बौद्ध भिक्षुओं के प्रति हार्दिक भक्ति प्रकट करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। हाँ, आपसे मेरी एक प्रार्थना है उदयन! अंग-राज मुझे नित्य भिक्षा प्रदान करता है, मेरी श्रद्धा है उदयन! कि आप भी उस भिक्षा में कुछ ग्रहण करें।"

"तुम्हें अंगराज नित्य क्या भिक्षा देता है ब्राह्मण!" उदयन ने पूछा।

"पांच सौ सिक्के प्रतिदिन ।" घोटमुख ने उत्तर दिया।

"मुझे सोने-चाँदी से क्या काम ब्राह्मण !" उदयन ने कहा—"मैं तो संन्यासी हूँ। सांसारिक लिप्साओं से अलग हूँ।"

"मगर मेरी हार्दिक अभिलाषा कैसे पूरी हो उदयन !" ब्राह्मण ने निवेदन किया—"यदि आप उसे न लें तो मुझे आज्ञा दें, मैं आपके लिए एक सुन्दर विहार बनवा दूं।"

"यह भी नहीं ब्राह्मण !" उदयन ने कहा—"मुझे सुन्दर विहार से काम क्या ? मैं तो किसी एक वृक्ष ही को अत्यन्त सुन्दर विहार बना लेता हूँ। अगर तुम्हारी हार्दिक अभिलाषा ही है तो तुम पटना में भिक्षु-संघ की एक उपस्थानशाला बनवा दो।"

घोटमुख ने सिर झुकाकर उदयन की बात स्वीकार की। घोटमुख की बनवाई हुई वह उपस्थानशाला आज भी पटना में घोटमुखी के नाम से प्रसिद्ध है।

२७

वर्ण-व्यवस्था

उस समय श्रावस्ती में विभिन्न देशों से आये हुए ब्राह्मणों का एक सच्छा जमघट-सा हो चला। जिसको देखिये वही कह रहा है, यह गौतम का प्रलाप है। चारों वर्ण कभी एक समान नहीं हो सकते। ब्राह्मण ही सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार न करना जघन्य पाप से कुछ कम नहीं। समस्त श्रावस्ती में उस

समय यही आवाज गूंज उठी थी। सब इसी को लेकर आपस में खिचड़ी पका रहे थे। पर किसी की गौतम के पास जाकर विवाद करने की हिम्मत नहीं होती थी।

निदान सब ब्राह्मण एकमत होकर आश्वलायन के पास गये। आश्वलायन एक विद्यार्थी था, वेदों और शास्त्रों का पूरा परिज्ञाता तथा महान् पंडित था। ब्राह्मणों ने उसके पास जाकर कहा—"आश्वलायन! श्रमण गौतम चारों वर्णो को एक समान समझता है। वह लोगों को इसी आशय का उपदेश भी देता है। इसलिए हम लोगों की प्रार्थना है कि आप गौतम के पास चलें और उनसे विवाद करें।"

श्रमण गौतम से विवाद! आश्वलायन आश्चर्यचकित-सा हुआ। उसने ब्राह्मणों से कहा—"श्रमण गौतम धर्मवादी हैं। धर्मवादियों से विवाद करने में कोई पार नहीं पा सकता। अतएव मैं श्रमण गौतम के पास जाकर विवाद न करूँगा।"

पर ब्राह्मण कब मानने लगे! ज्यों-ज्यों आश्वलायन उनसे अपना पिंड छुड़ाने का प्रयास करता गया, त्यों-त्यों इनकी प्रार्थना और भी अधिक बढ़ती गई। आखिर आश्वलायन ब्राह्मणों के आग्रह से खीझ उठा। उसने समझ लिया, यह मेरा पिंड छोड़ने वाले नहीं! मुझे गौतम के पास विवाद के लिए जाना ही होगा। उसने विवश होकर कहा—मैं श्रमण गौतम से विवाद करके उनसे कभी भी पार नही पा सकता। मगर यदि आप लोगों की इच्छा है, तो चलिये, मैं चलने के लिए तैयार हूँ।

उन दिनों भगवान् गौतम अनाथपिंडक के जेतवन में निवास करते थे। आश्वलायन ब्राह्मण वर्ग के साथ उनके पास जाकर तथा उन्हें प्रणाम करके बैठ गया। कुछ देर तक सन्नाटा-सा छाया रहा। तत्पश्चात् आश्वलायन ने शांति भंग करते हुए कहा—"ब्राह्मणों का कथन है गौतम! कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण

हैं। उन्हीं का दर्जा संसार में अत्यन्त ऊँचा है। वही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य वर्ण उनसे छोटे और निम्न हैं। क्या ब्राह्मणों का यह कथन ठीक है ?"

गौतम—आश्वलायन ! मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब ब्राह्मणों की स्त्रियाँ भी, अन्यान्य वर्णों की स्त्रियों की भाँति ही गर्भिणी रहती, बच्चा जनती और दूध पिलाती हैं, तब ब्राह्मणों को यह कहने का क्या अधिकार है कि ब्राह्मण वर्ण संसार में सर्वश्रेष्ठ वर्ण है। ब्राह्मणों की भी उत्पत्ति तो योनि ही से होती है आश्वलायन ! फिर क्या यह बात वास्तव में आश्चर्य में डालने वाली नहीं है।

आश्वलायन—यद्यपि आपका यह कथन ठीक है गौतम ! पर ब्राह्मण तो संसार में अपनी श्रेष्ठता ही का ढिंढोरा पीटते हैं !

गौतम—अच्छा मैं तुमसे पूछता हूँ आश्वलायन ! बताओ, हिंसक, चोर, दुष्ट, व्यभिचारी—चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे वह क्षत्रिय हो, चाहे वह वैश्य हो चाहे वह शूद्र हो, चाहे वह कोई भी हो—मरने के बाद नरक में उत्पन्न होगा या नहीं ?

आश्वलायन—ऐसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी को नरक में उत्पन्न होना पड़ेगा—सभी को नरक की भयानक यातनाएँ सहनी पड़ेंगी।

गौतम—इसी तरह इसके प्रतिकूल आचरण वाले ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र स्वर्गिक सुखों का समान रूप से उपभोग करेंगे या नहीं ?

आश्वलायन—क्यों नहीं ? धर्माचरण करने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों—सभी को स्वर्ग प्राप्त होगा, सभी स्वर्गिक सुखों का उपभोग करेंगे।

गौतम—फिर ब्राह्मणों को अपनी श्रेष्ठता का डंका बजाना क्या उचित है आश्वलायन !

आश्वलायन—नहीं है गौतम ! पर ब्राह्मण अपनी प्रवृत्ति से बाज नहीं आते। उन्हें अपनी श्रेष्ठता का बड़ा अभिमान है।

गौतम—अच्छा और भी सुनो आश्वलायन ! कोई क्षत्री या ब्राह्मण, जिसका जन्म अच्छे वंश में हुआ हो, चंदन की लकड़ियाँ एकत्रित करके आग जलाये; दूसरी ओर उसके ही पास शुद्ध कुलोत्पन्न एक चांडाल भी जंगल की लकड़ियों को एकत्रित करके आग जलाये; तो क्या दोनों के द्वारा जलाई गई आग से एक काम न किया जा सकेगा आश्वलायन ?

आश्वलायन—क्यों नहीं ! ब्राह्मण और क्षत्री के द्वारा उत्पन्न की हुई आग भी अपने गुप्त तेज को प्रकाशित करेगी। दोनों में कोई अन्तर न होगा गौतम !

गौतम ने आश्वलायन के सामने कुछ और भी तर्क उपस्थित किये। आश्वलायन उन तर्कों को सुनकर, मूक बन गया। उसने प्रसन्नतापूर्वक गौतम की सत्ता स्वीकार कर ली।

गौतम ने अपने प्रभाव को और भी अधिक उद्भासित करते हुए कहा—"बहुत दिनों की वात है आश्वलायन ! एक जंगल में सात ब्राह्मण ऋषि पत्तों की कुटी बनाकर निवास करते थे। तप ही उनके जीवन का महत व्यापार, जप ही उनके जीवन का मूल उद्देश्य ! तप और जप की अधिकता ने उन्हें अभिमान के एक ऊँचे आसन पर बैठा दिया। ये ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठता की दुहाई देकर कहने लगे कि संसार में हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं।"

"उन्ही दिनों किसी महावन में एक योगर्षि रहा करते थे। उनका नाम था असित देवल। उनके कानों में भी ब्राह्मण ऋषियों के जप-तप की वात गूंज गयी। वे उन ऋषियों के आश्रम की ओर चल दिये। उस समय उनकी मूँछ-दाढ़ी घुटी हुई थीं। शरीर पर लाल रंग का एक वस्त्र था। चरणों मे खड़ाऊँ, हाथ में सोने-चाँदी का दंड, ऐसा ज्ञात होता था, मानो देवलोक से

कोई देवता भूमि पर उतरा चला आ रहा हो।

"असित देवल ने ऋषियों की कुटी के आँगन में प्रवेश कर पुकारा—'ब्राह्मण-ऋषियो! आप लोग कहाँ चले गये? बोलते क्यों नहीं भाई?' अशिष्टतापूर्ण असित देवल की आवाज!! सबके सब कहने लगे—'कौन धृष्ट है, जो इस तरह की आवाज ब्राह्मण ऋषियों के प्रति अपने मुख से निकाल रहा है? क्या उसे ब्राह्मणों का प्रभाव विदित नही? अच्छा उसे श्राप देकर जला देना चाहिए!'

"सातों ब्राह्मण ऋषि अंजलि में जल लेकर श्राप देने के लिए बैठ गये। मंत्र पढ़ने लगे। अनेक क्षण बीत गये। ब्राह्मण ऋषियों को आश्चर्य हुआ। बात क्या है? दूसरे तो श्राप देते ही जल जाते थे—भस्म हो जाते थे, मगर यह अभी तक सामने खड़ा है। जलने की कौन कहे, श्राप से इसका शरीर और भी अधिक सुन्दर और दर्शनीय होता जा रहा है। सातों ब्राह्मण ऋषियों के लिए असित देवल आश्चर्य की एक पहेली-सी बन गये।

"ऋषियों को विस्मय में पड़ा देखकर देवल ने कहा—'आप लोग चिंता न करें। आप सब अपने मन में यह कदापि न समझें कि मेरा तप और ब्रह्मचर्य व्यर्थ है। नहीं, आप लोगों का मन दूषित हो गया है। आप लोगों को चाहिये कि अपनी मानसिक दुर्भावनाओं को निकालकर बाहर फेंक दें।'

"'हम लोग अपनी मानसिक दुर्भावनाओं का परित्याग करते हैं!' सातों ब्राह्मण ऋषि एकसाथ बोल उठे—'[illegible], आप कौन हैं?'

"'शायद आप लोगों ने असित देवल ऋषि का नाम सुना हो—' देवल ने उत्तर दिया—'मैं ही असित देवल हूँ।'

"'असित देवल ऋषि! उनके तप के प्रभाव से तो सारा ब्रह्मांड तक काँप उठता है। उन्हीं को जलाने के लिए हम लोगों

ने प्रयास किया। हम लोगों का यह प्रयास कितना निंदनीय था, कितना जघन्य था!' ब्राह्मण ऋषियों का मस्तक लज्जा से नीचे झुक गया। वह दौड़कर देवल के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे—'क्षमा कीजिये योगर्षि! क्षमा कीजिये!!'

"देवल ने प्यार से ब्राह्मण ऋषियों को आशीर्वाद देते हुए कहा—'मेरे कानों में यह आवाज़ पड़ी कि जंगल में रहने वाले सात ब्राह्मण ऋषि इस बात का दम्भ करते हैं कि संसार में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ है। केवल आप लोगों की इसी बात को सुनकर मैं यहाँ चला आया। क्या सचमुच आप लोगों ने इस आशय की घोषणा की है?'

"'हाँ ऋषिवर!' ऋषियों ने उत्तर दिया—'सचमुच हमने यह कहा है कि संसार में ब्राह्मण वर्ण ही सर्वश्रेष्ठ है!'

"'यही तो आप लोगों के मन की मलिनता थी ऋषियो!' असित देवल ने कहा—'मुझे आश्चर्य होता है, आप लोगों की इस बात पर। न जाने आप लोगों ने किस बुद्धि और तर्क-शक्ति का सहारा लेकर यह घोषणा की है! आप लोग तो यह जानते ही होंगे कि गर्भ में प्राणियों का धारण किस तरह होता है। क्या यह भी बताने की आवश्यकता है कि माता-पिता और गंधर्व के संसर्ग से गर्भ प्राणी को धारण करता है। जब तक गंधर्व माता-पिता के संसर्ग में सहयोग नहीं प्रदान करता, तब तक गर्भ नहीं स्थित होता। मैं पूछता हूँ ऋषियो, वह गंधर्व कौन है? ब्राह्मण है, क्षत्री है, वैश्य है या शूद्र है?'

"'नहीं ऋषिराज!' ऋषियों ने उत्तर दिया—'वह इनमें से कोई नहीं। वह तो प्राणियों के उत्पादन का एक स्वत्व मात्र है।'

"'फिर' देवल ने कहा—'ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र कहाँ से आये? इनमें क्या कोई सर्वश्रेष्ठ और कोई अन्त्यज के नाम से पुकारा जा सकता है? यदि हाँ तो कैसे? बताओ ऋषियो,

अपनी घोषणा का अब प्रतिपादन नहीं करते ?'

" ब्राह्मण ऋषि चुप रहे। उनके पास देवल के तर्क का कोई उत्तर ही नहीं। सातों का मस्तक देवल के सामने झुक गया! सातों ने अपनी भूल स्वीकार कर ली।

" आश्वलायन!" गौतम ने कहा—"जब सातों ब्राह्मण ऋषि इस सम्बन्ध में अवाक् हो हो गये, तब तुम्हारा अवाक् हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।"

आश्वलायन ने अपना मस्तक झुका दिया। उसके साथ ही साथ समस्त ब्राह्मण वर्ग का भी मस्तक गौतम के सामने झुक गया। सबने एकसाथ और एक स्वर में उसका समर्थन किया कि वर्णव्यवस्था एक प्रपंच मात्र है।

गौतम की आत्मा को इस समर्थन से कितना आनन्द मिला होगा, कितना सुख हुआ होगा!!

२८

महायु ब्राह्मण

मिथिला की पवित्र नगरी! धर्म ही वहाँ का राजा, धर्म ही वहाँ का व्यापार। न दुःख में दुःखी न सुख में आनंदित। दुःख-सुख में सब एक समान [illegible] जीवन व्यतीत करते थे। न कोई किसी पर रोता था, न कोई किसी पर हँसता था। सबके चेहरे पर [illegible] सबको आह्लादित कर [illegible]। क्यों न हो, धर्म इन्हीं [illegible] के कारण तो मिथिला का मस्तक आज भी उन्नत [illegible]

उठा हुआ है।

इसी मिथिला में उन दिनों ब्रह्मायु नाम का एक ब्राह्मण रहता था। एक सौ बीस साल की आयु, बाल सफेद, मुँह पोपला। परन्तु आकृति पर दैवी ज्योति-प्रदीप्त सी रहा करती थी। ललाट पर प्रतिभा की चमक, आँखों में गम्भीरता की झलक यह साफ दर्शाती थी कि ब्रह्मायु वेदों का पारंगत विद्वान् और शास्त्रों का अनोखा पण्डित है।

ब्रह्मायु का एक शिष्य था। उसका नाम था उत्तर। वह भी अपने गुरु ही के समान वेदों का सुज्ञाता और शास्त्रों का महान पण्डित था। ब्रह्मायु उसे प्यार करता, उसे अपने प्राणों के समान समझता। उत्तर भी गुरु के चरणों में अपने हृदय की श्रद्धांजलि चढ़ाने में कुछ कोर-कसर नहीं रखता था।

एक दिन ब्रह्मायु के कानों में आवाज पड़ी—शाक्य पुत्र श्रमण गौतम अपने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ इस समय विदेह में यात्रा कर रहे है ? विद्वान् और अनुभवी ब्राह्मण ! विद्वानों का क्यों न सम्मान करे ? और फिर श्रमण गौतम का ! वह तो योगी हैं, ब्रह्मचारी है। अपनी ब्रह्मचर्य शक्ति से समस्त ब्रह्मलोक को भी प्रकाशित करते है। फिर वह बड़ा विद्वान् ब्राह्मण, क्यो न उनके दर्शन के लिए लालायित हो उठे। उसने अपने प्रिय शिष्य उत्तर को बुलाकर कहा—"उत्तर ! शाक्यपुत्र, श्रमण गौतम पाँच सौ भिक्षुओं के साथ इस समय विदेह में यात्रा कर रहे है। मैं सुनता हूँ वह अर्हत है, सम्यक्-संबुद्ध है। उनकी कीर्ति से समस्त दिशाएँ गूँज उठी है, उनके यश से संसार सुवासित हो चला है। उत्तर ! तुम श्रमण गौतम के पास जाओ। उन्हें देखकर इस बात का निर्णय करो कि क्या वह वास्तव में महापुरुष है।"

गुरु की बात सुनकर उत्तर विस्मय में पड़ गया। मन में सोचने लगा—मैं कैसे इसका निर्णय करूँगा कि गौतम महापुरुष

है या नही ? वह कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा। गुरु से पूछने की उसकी हिम्मत न होती थी। अवसर की कमजोरी कदाचित् गुरु जी को खल जाये। पर विना पूछे तो काम चलेगा नही। उत्तर ने सविनीत स्वर में गुरु से पूछा—"गुरुवर, मैं कैसे जान सकूँगा कि श्रमण गौतम महापुरुष हैं या नही ?"

"क्या तू महापुरुषों के वत्तीस लक्षण नहीं जानता उत्तर !" ब्राह्मण ने कहा—"अच्छा लो यह महाकाव्य, इसमें गाथा रूप में महापुरुषों के वत्तीस लक्षण लिखे है। अव तो तू इन्हें पढकर गौतम के महापुरुषत्व की परीक्षा कर सकेगा।"

उत्तर ने श्रद्धा से गुरु के सामने मस्तक झुका लिया।

उद्योगी छात्र, वत्तीस लक्षण याद करने में उसे देर ही कितनी लगती ! वह अपना काम समाप्त कर, गौतम की परीक्षा के लिए उनके पास चल पड़ा।

विदेह में श्रमण गौतम एक वृक्ष के नीचे बैठकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे। उत्तर गया, वह भी उन्हें अभिवादन कर एक ओर वैठ गया। गौतम उपदेश दे रहे थे। भिक्षु सुनने में लगे थे। किसी को खबर क्या ? पर उत्तर तो अपना काम करने में लगा था। वह बड़े ध्यान से गौतम के शरीर में वत्तीसों लक्षणों की खोज कर रहा था। तीस लक्षण तो मिल गये, केवल दो के लिए परेशानी ! बेचारा उत्तर गौतम की जीभ और उनकी गुह्येन्द्रिय कैसे देखे !

सहसा योगी गौतम की आत्मा जाग उठी। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ, मानो नवागंतुक उनके समस्त शरीर की परीक्षा करके केवल जीभ और गुह्येन्द्रिय की परीक्षा के लिए परेशान है। गौतम ने तुरन्त योग का अभिनय किया। गुह्येन्द्रिय साफ-साफ झलक उठी। जीभ वाहर निकलकर कानों तक फैल गई। उत्तर इस योग माया को देखकर ऐसा आश्चर्य-चकित हुआ कि उसे

कुछ देर तक अपने शरीर का ध्यान भी न रहा!

गुरु की आज्ञा का पतिपालक उत्तर! गौतम के महापुरुषत्व की परीक्षा कर लेने पर भी उसे संतोष न हुआ। उसने मन ही मन गौतम के साथ रहने का संकल्प किया। वह छः महीने तक गौतम के साथ परछाईं की भाँति रहा। वह गौतम के एक-एक काम को बड़े ध्यान से देखता, उस पर विचार करता और विचार करने के बाद उसकी सराहना करता।

छः महीने बीत गये। उत्तर की आत्मा को संतोष हुआ, सुख हुआ। वह भगवान् गौतम को मन ही मन प्रणाम कर अपने गुरु ब्रह्मायु के पास लौटा। उसने ब्रह्मायु से निवेदन किया— "गुरुवर! श्रमण गौतम वास्तव में सम्यक् सम्बुद्ध हैं। वास्तव में वह अलौकिक महापुरुष है। संसार में ऐसे महापुरुषों का दर्शन बहुत कम हुआ करता है।"

ब्रह्मायु के दिल पर गौतम की सत्ता पहले ही अपना प्रभाव डाल चुकी थी। उत्तर की बात ने उस पर और भी पालिश कर दी। ज्यों ही उत्तर ने गौतम की प्रशंसा करते हुए अपनी बात समाप्त की, त्यों ही ब्रह्मायु ने विदेह की ओर मुख करके श्रद्धापूर्वक कहा—भगवान् गौतम! तुम्हें नमस्कार है।"

विदेह में चारिका के लिए परिभ्रमण करते हुए भगवान् गौतम मिथिला में भी पहुँच गये। मिथिला में मखादेव के आम्र-वन में उन्होंने अपना डेरा डाला। केवल पहुँचने की देर थी, बात में खबर नगर-भर में गूँज उठी। साधकों और भक्तों का समूह टूट पड़ा। जिसे देखिये, उसी के मन में भगवान् गौतम के दर्शन की लालसा! जिसे देखिये, उसी के हृदय में उनके देखने की साध! वह दृश्य, वह समा! क्या उसका भी वर्णन किया जा सकता है?

बूढ़े ब्रह्मायु के कानों में भी आवाज पड़ी। उसकी इतने

दिनों की हार्दिक भक्ति ! फिर वह गौतम के दर्शन में कब देर लगा सकता था ! ब्राह्मण ब्रह्मायु भी अपने शिष्यों के साथ गौतम का दर्शन करने के लिए चल पड़ा। आम्रवन के समीप पहुँचने पर सहसा उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि बिना सूचना दिये हुए गौतम के पास जाना ठीक नहीं। न जाने उनके मन में इससे किस प्रकार का विचार उत्पन्न हो !

उसने अपने एक शिष्य को बुलाकर कहा—"तुम श्रमण गौतम के पास जाओ। उनके चरणों में मेरा अभिवादन करके उनसे कहो कि बूढ़ा ब्रह्मायु आपका दर्शन करना चाहता है; क्या आप उसे अपना थोड़ा-सा समय देंगे।"

गौतम भगवान् कब किसी को रोकने लगे ! चाहे उनका शत्रु हो, चाहे उनका मित्र। उनका द्वार तो प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रतिक्षण खुला रहता था। उन्होंने ब्रह्मायु के शिष्य को अपनी स्वीकृति दे दी। शिष्य को इस स्वीकृति से आनन्द ही हुआ होगा।

उस समय मिथिला के गृहपति ब्राह्मण गौतम को घेरकर बैठे हुए थे, सबकी निगाह आते हुए बूढ़े ब्रह्मायु पर पड़ी। सबने अपना-अपना आसन छोड़ दिया। पर ब्रह्मायु ने गौतम के चरणों में प्रणाम कर ब्राह्मण गृहपतियों से कहा—"गृहपतियो ! आप लोग अपने-अपने आसन पर बैठें, मैं भगवान् गौतम ही के पास बैठूंगा।"

ब्रह्मायु गौतम के पास बैठ गया। गौतम का उपदेश होने लगा। कुछ देर तक लगातार उपदेश होता रहा ! सब लोग शांतिपूर्वक सुनते रहे। तत्पश्चात् सहसा ब्रह्मायु बोल उठा—"भगवन्, आपकी अमृतमयी वाणी ने मेरे हृदय की आँखें खोल दीं। मैं अब तक अंधकार में पड़ा हुआ था। आज आपके उपदेश से मैं इस समय जिस दिव्य प्रकाश का दर्शन कर रहा हूँ, वह

अद्‌भुत है, अनोखा है !"

ब्रह्मायु यशस्वी और कीर्तिशाली ब्राह्मण ! समस्त मिथिला में उसकी विद्वत्ता का डंका बज रहा था। जब उसी ने गौतम के चरणों में सिर झुका लिया, तब तो अवश्य ही भगवान् गौतम सम्यक्-संबुद्ध है—गृहपति आश्चर्य-चकित होकर मन में सोचने लगे। सबने ब्रह्मायु ही के साथ गौतम के चरणों में अभिवादन किया। उनकी श्रद्धा और भक्ति! न जाने उसमें हृदय की कितनी लालसाएँ भरी हुई थीं।

गृहपतियों से चले जाने के बाद ब्रह्मायु ने गौतम से निवेदन किया—"यदि आप भिक्षुओं सहित कल का भोजन हमारे यहाँ करें, तो बहुत अच्छा हो।"

गौतम ने केवल मौन रहकर ही अपनी स्वीकृति दे दी। बूढ़े ब्राह्मण के हर्ष का ठिकाना न था। उसकी रग-रग से जैसे श्रद्धा और भक्ति उछली-सी पडती थी। न जाने उसके शरीर में कहाँ से शक्ति और साहस का सागर-सा उमड़ उठा। वह लगा दूने उत्साह के साथ भोजन की तैयारी करने। जिसने उसके उस साहस को देखा, दाँतों तले उँगली दबाई, विस्मय किया। क्यों न हो ? अभ्यागतों की सेवा का रहस्य वह भली भाँति समझता था न ! !

दूसरे दिन उसने ठीक समय पर अपना एक विद्यार्थी भेज कर गौतम को सूचना दी कि भोजन तैयार है। गौतम भिक्षुवर्ग सहित ब्रह्मायु के घर आ पहुँचे। ब्रह्मायु ने गौतम की सेवा के कार्य में अपने किसी शिष्य की भी सहायता न ली। उसने सब काम स्वयं अपने हाथों से किया। उसकी सेवा-भक्ति को देख-कर स्वयं भगवान् गौतम को विस्मय करना पड़ा।

ब्रह्मायु के घर भोजन करने के एक सप्ताह बाद गौतम मिथिला से विदेह चारिका के लिए चले गये। इसी समय बूढ़े

ब्रह्मायु की मृत्यु हो गई—वह सांसारिक बंधनों को तोड़कर स्वर्गलोक में चला गया।

भगवान् गौतम के कानों में जब ब्रह्मायु के मृत्यु का समाचार पड़ा, तब सहसा उनके मुख से निकल पड़ा, वह अवश्य देवलोक में उत्पन्न होगा। वह जीवन और मरण के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो गया। क्यों न हो, उस पर गौतम भगवान् की कृपा जो थी!

२९

बुद्ध बुरे काम नहीं कर सकते

कंधे पर चीवर और हाथ में पात्र। उन्नत ललाट, ललाट पर प्रतिभा की झलक। आँखों में तेज, आकृति पर ब्रह्मचर्य-शक्ति की आभा। मानो कोई देवता हों। देवलोक से उतरकर श्रावस्ती में भिक्षाचार के लिए घूम रहे हों। राजा प्रसेनजित् की उन पर नजर पड़ी। वह हाथी पर चढ़कर नगर के बाहर किसी काम से जा रहा था। उसने अपने महामात्य सिरिविड्ढ को संबोधित करके कहा—"यह कौन है महामात्य, कोई देवता है या भिक्षु?"

"यह आयुष्मान् आनंद है।" महामात्य ने उत्तर दिया—"गौतम के भिक्षुओं में, यह एक बड़े प्रसिद्ध भिक्षु है।"

"भिक्षु आनंद! यह तो बड़े ही कीर्तिशाली हैं। फिर इनके दर्शन के इस सुयोग को क्यों हाथ से जाने दिया जाये।" राजा

ने तुरंत एक आदमी को बुलाकर उससे कहा—"तुम आयुष्मान् आनंद के पास जाओ। उनसे कहो, यदि उन्हें कोई आवश्यक काम न हो तो थोड़ी देर के लिए मार्ग पर ठहर जाएँ।"

आदमी ने दौड़कर आनंद को सूचना दी। राजा प्रसेनजित् की आज्ञा, और आनंद न रुके। यह तो एक आश्चर्य की बात है। उन्होंने आदमी से कहा—"जाओ, महाराज से कह दो, आनंद मार्ग में रुककर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

राजा प्रसेनजित् के हर्ष की सीमा नहीं! उसे आयुष्मान् आनंद के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। वह बौद्ध भिक्षुओं का प्रेमी था न! उसने शीघ्रता से आनंद के पास पहुँचकर उन्हें श्रद्धापूर्वक अभिवादन किया। उस अभिवादन में कितनी श्रद्धा रही होगी, कितनी भक्ति रही होगी!!

राजा ने अभिवादन के पश्चात् आनन्द से कहा—"यदि आपको कोई अत्यंत आवश्यक काम न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे साथ अचिरवती नदी के किनारे चलें।"

आनन्द भिक्षु! उन्हें अत्यावश्यक काम क्या? केवल चारिका से तात्पर्य। फिर उन्हें चलने में आपत्ति क्यों होने लगी? वह राजा के साथ अचिरवती नदी के किनारे गये और एक वृक्ष के नीचे बिछे हुए आसन पर बैठ गये।

भिक्षुओं का प्रेमी राजा प्रसेनजित्! वह कब देख सकता था कि आनन्द वृक्ष के नीचे एक साधारण आसन पर बैठें! वह झट बोल उठा—"आयुष्मान् आनन्द, आप वहाँ न बैठें। आप यहाँ आकर इस कालीन पर बैठें।"

"नहीं महाराज!" आनन्द ने उत्तर दिया—"आप बैठें। मुझे इसी पर बैठा रहने दें।"

प्रसेनजित् चुप हो गया, समझ गया—आनन्द 'ठहरे संन्यासी!" संसार से विरत! वह इस कालीन पर क्यों बैठने

फिर मैं आपको क्या दूं ? क्या देकर अपने हृदय की उफनती हुई श्रद्धा को शांत करूं ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए महाराज !" आनन्द ने उत्तर दिया—"मैं संतुष्ट, सुखी हूं। मुझे कुछ ग्रहण करने से काम ही क्या ? मैं तो संसार को छोड चुका हूं—मैं संन्यासी हूं।"

राजा प्रसेनजित् चुप हो गया। मन में कुछ सोचने लगा, कौन जाने ? पर कुछ देर के बाद उसने विनीत स्वर में आनन्द से कहा—"महाराज ! मेरे पास अजातशत्रु का भेजा हुआ, सोलह हाथ लंबा, आठ हाथ चौड़ा, एक विशेष प्रकार का वस्त्र है। मेरी प्रार्थना है, आप इसे अवश्य स्वीकार करें।"

"मैं उसे लेकर क्या करूंगा महाराज !" आनन्द ने उत्तर दिया—"मेरे पास इस समय तीनों चीवर मौजूद हैं। फिर वह मेरे किस काम आवेगा ?"

"आयुष्मान् आनन्द !" राजा प्रसेनजित् ने कहा—"सामने अचिरवती नदी मद गति से प्रवाहित हो रही है। जब पर्वत पर अतुल वर्षा होती है, तब इसका वेग कुछ और ही होता है। उस समय इसके दोनों किनारे भरे हुए रहते हैं। इसी प्रकार आनन्द, आप इस वस्त्र से तो अपना चीवर बना लें। आपके वस्त्रों को साथ के ब्रह्मचारी आपस में बांट लेंगे।"

आनन्द प्रसेनजित् की बात अब टाल न सके। प्रसेनजित् उन्हें वह वस्त्र देकर चला गया।

उन दिनों गौतम भगवान् श्रावस्ती में निवास करते थे। आनन्द ने वह वस्त्र ले जाकर उनके चरणों पर चढ़ा दिया और हाथ जोड़कर कहा—"भगवन् ! यह राजा प्रसेनजित् ने मुझे दिया था। मैं अपनी ओर से आपके चरणो पर भिक्षु-संघ के लिए अर्पण कर रहा हूं।"

आनन्द का यह त्याग ! गौतम भी मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगे। आनन्द के अहोभाग्य ! उनकी प्रशंसा में गौतम के मुख से कल्याणकारी शब्द निकले।

३०

ऊँचे स्वर से न बोलो

चातुमा में आँवले का बाग था। सुरम्य और शान्तिप्रद स्थान था। फिर क्यों न भगवान् गौतम उसे अपना निवास-स्थान बनावें, क्यों न उनका चित्त उसे देखकर विमोहित हो जाय? वह तो शान्ति ही को अपने जीवन की मुख्य वस्तु समझते थे। भिक्षुओं से कहते, शोर न करो। गृहपतियों को उपदेश देते, शान्ति से जीवन व्यतीत करो। शान्ति उन्हे इतनी प्यारी थी, जितने प्यारे उन्हें उनके प्राण भी न रहे होंगे।

उस आँवले के बाग की चिर शान्ति ही ने तो उन्हें विमोहित कर लिया। वह लगे, एक आँवले के वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर निवास करने। कुछ दिन बीत गये। अशान्ति नहीं, कोई बाधा नहीं। बड़े मजे में जीवन अतिवाहित हो रहा था। आयुष्मान् आनन्द के साथ चारिका करते, लोगों को उपदेश देते और उसी आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर संसार के अनेक कष्टों का अनुभव करते। ओह, वह जीवन ! क्या उसकी समानता कोई कर सकता है?

एक दिन प्रभात का समय था। भगवान् गौतम अपने प्यारे

आँवले के वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठे हुए थे। सहसा वह चौंक पड़े—उनके कानों में पाँच-छः सौ मनुष्यों की, एकसाथ ही ऊँचे स्वर से बोलने की आवाज पड़ी। उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बुलाकर पूछा—"आनन्द! यह शोर क्यों हो रहा है? ऐसा जान पड़ता है मानो किसी तालाब में मछवाहे मछलियाँ मार रहे हों!"

"नहीं भगवन्!" आनन्द ने सविनीत स्वर में निवेदन किया—"यह मछवाहों का शब्द नही है। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि पाँच सौ भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठकर महाशब्द कर रहे है।"

"उन्हें मेरे पास बुला लाओ आनन्द!" गौतम ने कहा।

आनन्द ने मस्तक झुकाकर आज्ञा स्वीकार की और उन भिक्षुओं के पास जाकर उन्होंने कहा—"आप लोगों को भगवान गौतम इसी समय अपने पास बुला रहे है।"

भगवान् गौतम की आज्ञा! किसमें शक्ति है जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करे! किसमें साहस है जो उनकी बात को न माने! सब भिक्षु उसी समय सिर झुकाकर गौतम के पास चल दिये।

भिक्षु गौतम के पास पहुँचकर, उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। गौतम ने भिक्षुओं की ओर देखकर कहा—"क्या यह सच है कि जो अभी ऊँची आवाज आ रही थी, वह आप ही लोगों की थी!"

"हाँ भगवन्!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"वह आवाज जो अभी आ रही थी, हमी लोगों की थी।"

"ठीक है," गौतम ने कहा—"भिक्षुओं को कभी शोर नहीं मचाना चाहिए। आप लोगों ने भिक्षु-संघ में अशान्ति उत्पन्न करके भिक्षु-जीवन की मर्यादा का उल्लंघन किया है! इसलिए

मैं आप लोगों को आज्ञा देता हूँ कि आप लोग इसी समय भिक्षु-संघ को छोड़कर बाहर निकल जायं।"

गौतम का कठोर अनुशासन ! सचमुच भिक्षु-संघ की मर्यादा का उल्लंघन ! कौन गौतम के सामने सिर उठाये ? सबका सिर तो लज्जा से नत हो गया था। सबके सब नख से भूमि कुरेदते हुए बैठे ही रह गये। मानो उठने में देर करके उनसे अपने अपराधों की माफी माँग रहे हों !

पर गौतम कब मानने वाले थे ? वह अपनी आज्ञा को क्यों खाली जाने देने लगे ? उन्होंने आज्ञा पालन में देर होते देखकर पुनः दुहराया—"मैं आप लोगों को आदेश देता हूँ, आप लोग इसी समय भिक्षु-संघ छोड़कर बाहर निकल जायँ।"

निराशा ! अपराध की माफी दरबार से न होगी। भिक्षु सिर नत किये हुए उठ खड़े हुए, और गौतम को प्रणाम कर एक ओर को चल दिये। उस समय उन पाँच सौ भिक्षुओं के हृदय में क्या था—निराशा, लज्जा या और कुछ ? यह कौन जाने।

चातुमा प्रजातन्त्र भवन में उस समय चातुमा के प्रतिष्ठित शाक्य एकत्रित होकर किसी विषय पर वाद-विवाद कर रहे थे। सहसा, शाक्यों की दृष्टि उसी ओर जाते हुए पाँच सौ भिक्षुओं पर पड़ी। सब चौंक पड़े, विस्मय-मग्न हो गये। सोचने लगे, इतने भिक्षु एकसाथ कहाँ जा रहे हैं ? किसी तीर्थयात्रा पर या चारिका के लिए ? शाक्यों ने अपने को अधिक देर तक विस्मय में न रहने दिया। एक आदमी को भेजकर भिक्षुओं को प्रजातंत्र भवन में बुलाया।

एक प्रतिष्ठित शाक्य ने भिक्षुओं का श्रद्धापूर्वक स्वागत करते हुए कहा—"आप लोग, इतनी बड़ी संख्या में एकसाथ कहाँ जा रहे हैं ?"

"हम लोगों को भगवान् गौतम ने भिक्षु-संघ से बाहर चले

जाने की आज्ञा दी है।" एक भिक्षु ने उत्तर दिया।

भिक्षु की बात सुनकर शाक्य चुप हो गये, सन्नाटे में आ गये। कदाचित् मन में सोचने लगे—अभी हाल के दीक्षित हुए इतने भिक्षु भिक्षु-संघ से अलग हो जाने पर क्या इनके मन में विकार न उत्पन्न होगा? क्या उस समय भी ये भिक्षु-संघ की मर्यादा का परिपालन कर सकेंगे? नहीं, कभी नहीं। भगवान् गौतम ने शायद इस सम्बन्ध में सोच-विचार से काम नहीं लिया!

एक प्रतिष्ठित शाक्य ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा आप लोग इस प्रजातंत्र-भवन में निवास करें। हम लोग भगवान् गौतम के पास जा रहे हैं। उनसे अनुनय-विनय करेंगे, कदाचित् वह राजी हो जायें।"

सभी शाक्य एकसाथ उठ खड़े हुए और भगवान् गौतम के पास आँवले के बन की ओर चल दिये।

उधर एक और अभिनय हुआ। गौतम ने पाँच सौ भिक्षुओं को भिक्षु-संघ से चले जाने की आज्ञा दी थी। इससे सारा ब्रह्मलोक काँप उठा। ब्रह्मा सोचने लगे—अब तो सारी सृष्टि ही विकास से भर जायगी। वे तुरन्त ब्रह्मलोक से अदृश्य होकर गौतम के पास चल पड़े।

इधर ब्रह्मा गौतम के पास प्रगट हुए, और उधर चातुमा के शाक्य भी आ पहुँचे। दोनों की एक ही प्रार्थना, दोनों की एक ही विनय। दोनों ही हाथों की अंजलि बाँधकर गौतम से यह कहने आये थे कि कृपा कर निर्वासित भिक्षुओं को फिर भिक्षु-संघ में सम्मिलित कर लीजिये।

गौतम ने दोनों की प्रार्थना सुनी। एक चातुमा के शाक्य हैं और दूसरे ब्रह्मलोक के ब्रह्मा। गौतम फिर कैसे निर्वासित भिक्षुओं को बुलाने से इन्कार करते? उन्होंने निर्वासित भिक्षुओं

को भिक्षु-संघ में बुलाकर कहा—शांति जीवन का मूल मंत्र है। इसी मंत्र का प्रत्येक भिक्षु को जाप करना चाहिए।

भिक्षु-संघ में फिर से मिला लिये जाने के कारण निर्वासित भिक्षुओं के मन में कितना आनन्द हुआ होगा, कितना आह्लाद हुआ होगा!!

३१

राहुल

राजगृह का वेणुवन। उसके पास ही शांतिप्रिय भिक्षुओं के निवास के लिए बना हुआ वह महल कितना सुखदायी था, कितना सुन्दर था। जो उसे देखता, उसका मन उसमें निवास करने वाली चिर शांति पर लट्टू हो जाता, विमोहित हो जाता। जी चाहता, संसार के झंझटों से ऊबकर इसी मनोरम स्थान में आ बसे। क्यों क्यों न हो, वह बौद्ध श्रमणों के निवास का स्थान था न। उन दिनों आयुष्मान् राहुल उसी में विहार करते थे।

एक दिन भगवान् गौतम चारिका के लिए परिभ्रमण करते हुए राजगृह में जा पहुँचे। वहाँ उनके कानों में आवाज पड़ी—"आयुष्मान् राहुल आजकल वेणुवन के पास विहार कर रहे हैं।" गौतम के प्रिय शिष्य राहुल! चिर दिनों से उन्हें उनका कुछ संवाद न मिला था। राहुल का नाम सुनते ही गौतम वेणुवन की ओर चल दिए। राहुल के अहोभाग्य! इनके द्वार पर उनके भगवान् जा रहे हैं।

राहुल ने दूर ही से गौतम को आते हुए देखा। बस, क्या था! हृदय में आनन्द का सागर-सा लहरा उठा। ऐसा आनन्द, ऐसा आह्लाद!! बेचारे कुछ देर के लिए स्वयं को भी विस्मृत कर बैठे। जब चेत हुआ, तब गौतम को अपने सामने खड़ा पाया। यदि उस समय उनके मन में लज्जा का कुछ संचार हो गया हो तो आश्चर्य क्या?

"स्वागत में देर हुई!" भगवान् न जाने कब से सामने खड़े हैं, भगवान् का अनन्य पुजारी राहुल बेचैन हो उठा। झट से आसन बिछा दिया। दौड़कर पैर प्रक्षालन के लिए लोटे में जल भर लाये। लगे मल-मलकर पैर धोने। वह सेवा, वह साधुता!! उस पर तो सात्विक स्वर्ग भी निछावर किया जा सकता है।

राहुल के लोटे में थोड़ा-सा पानी शेष था। गौतम ने उसी को अपने उपदेश का लक्ष्य बनाया। राहुल को सचेत कर कहने लगे—"राहुल! देखो, लोटे में थोड़ा-सा पानी शेष है। इसी तरह जिन भिक्षुओं का झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती, उनमें थोड़ा-सा श्रमणत्व-भाव शेष है।"

इसके बाद गौतम ने लोटे का जल भूमि पर फेंक दिया। राहुल उनके इस कृत्य को ध्यानपूर्वक देखता रहा। गौतम ने उसे पुकारकर कहा—"राहुल! देखो अब मैंने लोटे के जल को भूमि पर गिरा दिया। लोटा जल से खाली हो गया। इसी तरह, जो जान-बूझकर झूठ बोलते हैं, उनके श्रमणत्व का अनादर होता है।"

गौतम ने लोटे को सीधा करके कहा—"राहुल! लोटा सीधा है, या औंधा? उसमें जल है या नहीं?"

"सीधा है भगवन्!" राहुल ने उत्तर दिया—"लोटे में एक बूंद भी जल नहीं है। वह जल से बिलकुल खाली है।"

"राहुल!" गौतम ने कहा—"पहले हम तुम्हें औंधे लोटे ही

की उपमा क्यों न सुना दें। जो लोग जान-बूझकर असत्य भाषण करते हैं, उनकी औंधे लोटे ही की भांति दशा होती है। न उनका कुछ स्थायित्व होता है और न उनकी कोई प्रतिष्ठा ही करता है। वे जगत में यत्र-तत्र कौड़ी के मोल बिका करते हैं।

तदनन्तर गौतम ने सीधे लोटे की ओर राहुल के ध्यान को आकर्षित करते हुए कहा—"राहुल ! जो लोग जान-बूझकर झूठ बोलते हैं, वे इस जल रहित सीधे लोटे ही की भांति स्वत्व-सार से खाली होते है। जैसे मान लो, एक राजा है। उसका एक हाथी है। वह भीमकाय है, उसके बड़े-बड़े दांत हैं, बड़े-बड़े पैर हैं। राजा उसे संग्राम के मैदान में ले गया। मैदान में हाथी अपने शरीर के संपूर्ण अंगों का उपयोग करता है, केवल सूंड़ का नहीं, सूंड़ का उपयोग न करने ही के कारण पीलवान उसे कहता है, इसका जीवन अविश्वसनीय है। इसके अतिरिक्त मैदान मे सूंड़ का उपयोग करने वाले हाथी का जीवन, पीलवान का दृष्टि में पूर्ण और विश्वसनीय होता है !

इसी तरह राहुल, जिन्हें जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही आती, उनके लिए संसार में कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं। इसलिए हंसी में कभी झूठ न बोलना चाहिए।

गौतम अपनी यह बात समाप्त ही कर पाये थे कि सहसा उनकी दृष्टि के एक टुकड़े पर पड़ी गौतम ने झट दर्पण का टुकड़ा अपने हाथों में उठा लिया और उसे राहुल को दिखाकर कहा—"यह किस काम आता है राहुल !"

"यह मुख देखने के काम में आता है भगवन् !" राहुल ने उत्तर दिया।

"ठीक है राहुल !" गौतम ने कहा—"मैं तुमसे इस समय यही उत्तर चाहता था। तुम्हारा शरीर भी दर्पण के समान स्वच्छ है, निर्मल है। जिस तरह तुम दर्पण में देख-देखकर अपना

शृंगार करते हो, उसी तरह तुम्हें अपने शरीर-रूपी दर्पण में देख-कर ही कायिक कर्म करना चाहिए। किसी काम को करने के पहले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि जो काम मैं करने जा रहा हूँ वह बुरा तो नहीं है ? उससे किसी प्रकार का अन-हित तो न होगा ? उससे किसी को पीड़ा तो न पहुंचेगी ? उसका परिणाम अपने या दूसरों के लिए भयावह तो न होगा। जो लोग इस भांति सोच-सोचकर अपने कायिक कर्मों का शृंगार किया करते हैं, वही संसार में श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं।

कायिक कर्मों ही की भांति वाचिक और मानसिक कर्मों का भी शृंगार करना चाहिए। भिक्षुओं और साधकों को कायिक, वाचिक, मानसिक, तीनों कर्मों में अपने को अत्यन्त पवित्र रखना चाहिए। उनकी यह पवित्रता, उनके भिक्षु-जीवन की मर्यादा को संसार में ऊँचा स्थान देगी।

गौतम की ऐसी सार-युक्त वाणी ! राहुल तो मन ही मन आनन्द से नाच उठा। जैसे उनके अन्तर की चिर अतृप्ति शांत हो गई हो ! उसने गौतम के चरणों में गिरकर श्रद्धापूर्वक कहा—"आज मेरा जीवन सफल हुआ। आज मैंने अपने जीवन को कृत-कृत्य पाया !

कौन कह सकता है कि राहुल की इस शब्दावली में उनके प्राणों की श्रद्धा नहीं थी ?

३२.

गाय और श्वान-वृत्तिधारी भिक्षु

वे दोनों भिक्षु थे। एक का नाम, कोलिय पुत्त पूर्ण और दूसरे का अचेल सेनिय था। दोनों मनुष्य थे, पर थे पशु वृत्तिधारी पूर्ण गाय की भाँति, गाय ही की सामग्री खाता और सेनिय दर-दर भटककर श्वान की वृत्ति खोजता। दोनों का रहन-सहन भी क्रम से गाय और कुत्ते ही के समान था। दोनों इसमें अभिमान का अनुभव करते, सुख का अनहद संगीत अलापते। कोई कुछ कहता तो झट से जवाब दे डालते, तुमसे क्या मतलब? तुम अपना करो, मुझे अपना करने दो। कौन जाने, जितना तुम्हें अपने में आनन्द मिलता हो, उससे कहीं बढ़कर मुझे अपने में आनन्द मिलता हो। लोग चुप हो जाते। सिवाय चुप हो जाने के इसका जवाब ही क्या हो सकता है?

उन दिनों भगवान गौतम कोलियों के हरिद्रवसन नामक कस्बे में निवास करते थे। रोज ही उसके पास भिक्षुओं की भीड़ लगी रहती, रोज ही उपदेश सुनने वालों का उनके आस-पास मेला लगा रहता। जिसको देखिये, उसी के हृदय में गौतम के प्रति श्रद्धा, जिसको देखिये, उसी की आँखों में स्नेह!! श्रद्धा और स्नेह का वह मेला, सचमुच हरिद्रवसन में बड़ा दर्शनीय-सा हो जाता।

एक दिन पूर्ण और सेनिय, ये दोनों भी गौतम के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। भीड़ लगी थी। लोग गौतम का उपदेश शांतिपर्वक सुन रहे थे। पर इन दोनों के हृदय में जैसे कोई व्याकुलता-सी हो, जैसे कोई बेचैनी-सी हो। दोनों क्षण-क्षण पर अपना रुख बदलते। मानो गौतम के पास, भीड़ का

अधिक देर तक ठहरना उन दोनों को बुरा लग रहा हो—मानो वे दोनों गौतम से अपनी कोई घात सुनाने के लिए अवसर खोज रहे हों ! आखिर कुछ देर के बाद भीड़ छँटने लगी। दोनों ने सुख और सतोप की साँस ली।

भीड़ हट गई। सब उपदेश सुनकर चले गये पर ये दोनों बैठे ही रह गये। मानो गौतम के कानों में अपने दिल की कोई बात डालना चाहते हों। फिर अब देर क्यों ? पूर्ण बेचैनी से बोल ही तो उठा—"भगवन् ! यह मेरा मित्र श्वान-वृत्तिधारी सेनिय है। यह कुत्ते ही की भाँति अपने सब कर्मों को पूरा करता है। कुत्ते ही की भाँति खाता, कुत्ते ही की भाँति चलता और कुत्ते ही की भाँति सोता तथा बैठता भी है। इसकी मरने पर क्या गति होगी ? यह किस योनि में जन्म धारण करेगा ?"

गौतम के हृदय को उसकी बातों से जैसे एक चोट-सी लगी। उन्होंने पूर्ण की ओर कुछ तेज-भरी निगाह से देखकर कहा—"चुप रह पूर्ण ! मुझसे इस बात की चर्चा न कर ! तुम्हारी इस बात को सुनकर मुझे आश्चर्य के साथ ही साथ महान् दुःख भी होता है।"

पर पूर्ण कब मानने लगे ! गौतम नाराज हों अथवा प्रसन्न हों, इसकी उसे चिन्ता क्या ? उसने तो गौतम से इस बात को पूछने के लिए संकल्प-सा कर लिया है। उसने गौतम की बात की उपेक्षा करके, अपनी बात एक नहीं तीन बार दुहराई। गौतम भी खीझ उठे। समझ गये, यह मानने को नहीं ! इसे मुझे जवाब देना ही पड़ेगा। फिर उन्होंने एक तीव्र दृष्टि से पूर्ण की ओर देखा। पूर्ण उससे कुछ सहमा अवश्य पर उसकी आग्रह-प्रगति में शिथिलता न आई।

"पूर्ण !" गौतम ने दुखी होकर कहा—"मेरी इच्छा इस सम्बन्ध में बात करने को नहीं थी, पर तेरा दुराग्रह, तेरा हठ !!

अच्छा, अपनी बात का जवाब सुनने के लिए तैयार हो जा। जवाब आसान है, हाँ बहुत आसान। तेरा मित्र सेनिय श्वान-वृत्तिधारी है। फिर क्या तू आशा करता है कि वह देवलोक में उत्पन्न होगा। नहीं पूर्ण, वह श्वान-योनि ही में शरीर धारण करेगा!"

गौतम की बात सुनकर सेनिय रो पड़ा। सिसक-सिसककर आँसू बहाने लगा। उसने सविनीत स्वर में भगवान् गौतम से कहा—"भगवन्! आपकी बात से मैं दुखी नहीं। मुझे दुःख है कि मैंने इस वृत्ति को दीर्घकाल से धारण किया है। मेरी यह वृत्ति, क्या मुझसे न छूट सकेगी भगवन्! मेरी ही भाँति, मेरा यह मित्र पूर्ण भी, गाय की वृत्ति रखता है। इसकी मरने पर क्या गति होगी? यह किस योनि में जन्म धारण करेगा?"

"मैं कह चुका सेनिय!" गौतम ने उत्तर दिया—"पूर्ण की भी वही गति होगी, जो तुम्हारी। तुम जिस तरह श्वान की वृत्ति करने के कारण श्वान की योनि में जन्म धारण करोगे, उसी तरह पूर्ण भी गाय-वृत्तिधारी होने के कारण गाय की योनि में उत्पन्न होगा।"

सेनिय की भाँति पूर्ण भी रो उठा। उसने भी रोकर गौतम से निवेदन किया—"भगवन्! भगवन्! मैंने भी चिरकाल से इसी वृत्ति को धारण किया है। मुझे दुःख है, क्या यह वृत्ति मुझसे न छूट सकेगी?"

दोनों के सकरुण आँसुओं ने गौतम के हृदय को भी पिघला दिया—"वे भी दयार्द्र होकर दोनों को प्यार की दृष्टि से देखने लगे। इतना ही नहीं, दोनों को उपदेश भी देने लगे। उनके अहोभाग्य कि गौतम के उपदेश सुनने को मिले। गौतम के उपदेश से उन दोनों के अंतर की आँखें खुल गईं। कुछ दिनों के बाद दोनों आत्म-संन्यासी के रूप में संसार में पाये गये।

क्या हम इसे गौतम की महिमामयी वाणी का प्रभाव नहीं कह सकते ?

३३
जीवक

जीवक, भिक्षु-संघ का प्रधान भिक्षु, गौतम भगवान् का प्रिय शिष्य था। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्रतिपादन में वह अपने जीवन की भी परवाह न करता। दिन-रात भिक्षु-संघ की सेवा में लगा रहता, उसकी मर्यादा को विश्व में बढ़ाता रहता। देखने वाले भी आश्चर्य करते, विस्मय करते। कहते, ऐसे ही भिक्षुओं से तो बौद्ध धर्म की मर्यादा संसार में ऊँचा स्थान पा सकेगी।

उन दिनों गौतम भगवान् राजगृह में जीवक के आम्रवन में निवास करते थे। जीवक भी एक दिन उनकी सेवा में जा पहुंचा। गौतम को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक ध्यानपूर्वक उनके तेज-मंडित मुख की ओर देखता रहा। तत्पश्चात् सविनीत स्वर में बोल उठा—भगवान्, मैंने लोगों को कहते सुना है कि श्रमण गौतम मांस खाते हैं। क्या यह सच है? कहीं ऐसे लोग भगवान् के चरित्र पर लांछन लगाने के उद्देश्य से तो ऐसी गर्हित घोषणा नहीं करते?"

"हाँ जीवक, सचमुच यही बात है," गौतम ने उत्तर दिया—"मुझ पर लांछन लगाने के उद्देश्य ही से कुछ लोग श्रमण ऐसा मिथ्या प्रचार किया करते हैं। मैं मांस कभी नहीं खाता

जीवक ! खाने की कौन कहे, उसे हाथ से छूता तक भी नहीं।"

"फिर क्या यह प्रचार बिलकुल तथ्य से खाली है भगवन्-?" जीवक ने कहा।

"खाली है, या नहीं जीवक !" गौतम ने उत्तर दिया— "यह मैं नहीं कह सकता। पर मैंने तीन प्रकार के मांस को भोज्य और तीन प्रकार के मांस को अभोज्य अवश्य घोषित किया है। सुनो, मैं अपनी घोषणा का रहस्य तुम्हें सुनाता हूँ।

" जीवक ! मैंने कहा है कि ऐसे जीव का मांस, जिसका अपने लिए मारा जाना स्वयं देखे, सुने या उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की उसके चित्त में शंका उत्पन्न हो, अभोज्य है। इसके प्रतिकूल ऐसे जीव का मांस, जिसका मारा जाना न तो दिखाई पड़े, न सुनाई दे और न उसके सम्वन्ध में किसी प्रकार की शंका ही उत्पन्न हो, भोज्य है।

" किन्तु जीवक, तथागत के सम्वन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। तथागत को खिलाने के उद्देश्य से जो प्राणी जीवों की हत्या करता है, उसके सिर पर तो अवश्य पाप की गठरी लादी जाती है। जानते हो क्यों ? सुनो—भिक्षु वनों में निवास करते है, गाँवों में घूमते है, परिभ्रमण करते है। उन्हें चाहे जो निमन्त्रण देकर अपने घर वुला ले, चाहे जो बुलाकर उन्हें अपने घर खाना खिला ले। मान लो, किसी गृहपति ने किसी भिक्षु को अपने घर निमंत्रित किया। गृहपति दुर्गुणों की खान, पर उसके आग्रह को, उसकी बात को भिक्षु कैसे टाल सकता है, वह उसकी भोजन कराने की श्रद्धा को कैसे ठुकरा सकता है ?

" भिक्षु यथासमय उसके घर गया। गृहपति ने उसका स्वागत किया, उसकी अभ्यर्थना की। भिक्षु आसन पर बैठ गया। गृहपति अपने हाथ से खाना परोसने लगा। भिक्षु जानता है कि जीवक गृहपति में अनेक अवगुण हैं, मगर फिर भी वह उसकी

भोजन-सामग्री को बड़े आनन्द से खाता है। उसके चित्त में न किसी प्रकार की ग्लानि होती है और न शोक। भिक्षु शोक, ग्लानि और मोह-ममता से बहुत परे होता है जीवक !

"इसीलिए मैंने अभी यह कहा है जीवक, कि जो लोग श्रावकों को खिलाने के उद्देश्य से जीवों की हत्या करते हैं, उन्हें पापों का भार अवश्य सिर पर लादना पड़ता है। उनके पापों का बँटवारा इस प्रकार किया जा सकता है जीवक ! जो सर्वप्रथम यह आदेश देता है कि जाओ, अमुक जीव को हत्या के लिए ले आओ, वह सबसे अधिक पाप का भागी होता है। जो उसके गले में रस्सी बाँधकर उसे अपने खूँटे से खींच ले आता है, उसको पाप की इस सम्पत्ति में दूसरा भाग होता है। जो उसे मारने का आदेश देता है, उसका तीसरा भाग होता है। जो उसकी हत्या के समय, अपने हृदय में संतोष का अनुभव करता है, उसका चौथा भाग होता है। जो उसके पके हुए मांस को तथागतों को खिलाता है, उसका पाँचवाँ भाग होता है।"

गौतम की इस बात का जीवक के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने विस्मय के स्वर में कहा—"भिक्षुओं का ऐसा जीवन, श्रावकों का ऐसा सात्विक आहार !! क्या इसकी भी जगत में कोई समानता कर सकेगा ? भगवन् ! आज आपने भोज्य, अभोज्य और भिक्षुओं के आहार की व्याख्या मुझे सुनाकर मेरे जीवन में अमरता का संचार कर दिया। मैं इतना प्रसन्न हूँ, इतना आनन्दित हूँ कि आनन्द और प्रसन्नता दोनों हृदय से आँखों की राह छलके पड़ते है, निकले पड़ते हैं !!"

कुछ देर के बाद गौतम ने देखा, सचमुच जीवक की आँखों से आँसू निकल रहे थे !

पोतलिय गृहपति

उस-देश का नाम अंगुत्तराय था। उसमें एक कस्वा था। कस्बे का नाम आपण था। कस्बे में करीब बीस हजार मनुष्य निवास करते थे। कस्बे के पास ही मंद गति से पाँच नदियाँ प्रवाहित हुआ करती थी। उनका सुरम्य नट, उनके सुरम्य कूलों पर शांत वनों की झाड़ियाँ!! ऐसा ज्ञात होता मानो अलबेली प्रकृति इस एक स्थान ही पर अपनी संपूर्ण छटाओं के साथ अठखेलियाँ किया करती है।

उन दिनों भगवान् गौतम इन्हीं नदियों से घिरे हुए एक वन-खंड में निवास करते थे। दिन-भर गाँवों में घूमकर चारिका करते और शाम होते-होते अपने स्थान पर पहुँच जाते। उन्हें वहाँ बड़ा आनन्द मिलता, बड़ा सुख प्राप्त होता। नदियों के कलकल गान, वन की अमर शांति, दोनों मानो गौतम के कानों में कोई अमर संदेश डाल रही थी।

एक दिन की बात है। गौतम चारिका के लिए आपण कस्बे में गये। दो-चार दरवाजों पर उन्होंने भोजन प्राप्त किया, खाया। फिर, कस्बे के वन-खंड की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान लगाने लगे।

अभी उन्हें ध्यान लगाये हुए कुछ ही क्षण बीत पाये थे कि सहसा उनकी आँखें किसी मनुष्य की पग-ध्वनि से खुल गईं। उन्होंने देखा, कस्बे का प्रसिद्ध वैश्य, पोतलिय खड़ा है।

पोतलिय एक गृहपति था। जाति का वैश्य, हृष्ट-पुष्ट, बड़ा धनी, ईश्वर का बड़ा अनुरागी। उसे किसी बात की कमी नहीं थी, धन-धान्य सभी घर में भरा था। प्रतिष्ठा भी थी, मर्यादा

भी थी। रोज प्रातः-सायं दस-बीस आदमी उसके द्वार पर आते और उसकी जी-हुजूरी बजाकर लौट जाते। पर उसने ईश्वर-भक्ति के उन्माद में समस्त सम्पत्ति को ठुकरा दिया। धन-धान्य आदि बेटे को सुपुर्द कर राम-भजन में मस्त रहने लगा। केवल भोजन और वस्त्र से काम। दिन-रात ईश्वर का नाम लेता। उन्हीं के नाम की माला जपा करता। लोग उसे ईश्वर का भक्त कहा करते थे।

पोतलिय भक्त अवश्य था, पर उसे स्वयं पर अभिमान भी बहुत था। वह सोचता था, संसार में मेरे समान कोई दूसरा नहीं। किसी में क्या शक्ति है, जो मेरी तरह इतनी बड़ी संपदा को ठुकरा सके! पोतलिय, केवल इसी अभिमान के कारण कभी-कभी संपूर्ण संसार में अपने को सबसे अधिक ऊँचा समझने लगता था।

हाँ तो जब गौतम की आँखें खुली, तब पोतलिय को उन्होंने अपनी आँखों के सामने देखा। उन्होंने अविलम्ब पोतलिय से कहा--"गृहपति, आसन बिछा है। यदि बैठने की इच्छा हो तो आसन पर बैठ जाओ।"

'गृहपति—मैं गृहपति हूँ।' पोतलिय विस्मय से चौंक उठा! उसकी नस-नस में एक आश्चर्य-सा नाचने लगा। उसने मुँह बनाकर गौतम से कहा—"गौतम, तुमने गृहपति के नाम से संबोधित करके मेरा अपमान किया। क्या तुम जानते नहीं कि मैं अब गृहपति नहीं हूँ। मैं सांसारिक वैभवों को त्यागकर गृहस्थ से अलग हो गया हूँ। मेरा त्याग! आह, इतना महान् है कि संसार में कोई उसकी समता भी नही कर सकता।"

गौतम हँसे-मुस्कुराये। उनकी मुस्कुराहट में एक रहस्य था, एक व्यंग्य था। पर इस रहस्य और व्यंग्य को भला व्यंग्य के नशे में मतवाला पोतलिय क्या समझ पाता! उसे इस ओर ध्यान देने

का अवकाश कहाँ ? वह तो गौतम के 'गृहपति' शब्द पर मन ही मन कुपित हो रहा था, जल रहा था।

गौतम ने उसकी मनोवृत्ति भाँपकर कहा—"क्रुद्ध न हो पोतलिय ! इसमें क्रोध करने की कोई बात नहीं। जरा सोच-समझ से काम लो। मैंने ठीक ही तुम्हें गृहपति के नाम से सम्बोधित किया है। इस समय तुम्हारा वही आकार, वही विचार, वही ढंग हैं, जैसे गृहपतियों के हुआ करते हैं। फिर तुम्हें श्रमण या संन्यासी के नाम से कैसे सम्बोधित करता ?"

"यह कैसे हो सकता है गौतम !" पोतलिय ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"तुम्हारा यह कथन बिल्कुल झूठ है, निस्सार है। भला तुम किस मुख से कहते हो कि मेरा आकार, मेरे विचार गृहपतियों जैसे है। मैने संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है। मैं न खेती करता हूँ और न उसमें किसी प्रकार का भाग लेता हूँ। सोने-चाँदी के व्यापार से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। गृहस्थ का सम्पूर्ण अधिकार पुत्रों को सौंपकर, मैं उससे बिल्कुल अलग हो गया हूँ। फिर मेरा आकार गृहपतियों ही जैसा कैसे गौतम ! मैं तो त्यागी हूँ, संन्यासी हूँ। मेरा स्थान, संसार में किसी भी संन्यासी से कम नहीं।"

"तुम्हारा यह कथन ठीक है गृहपति !" गौतम ने उत्तर दिया—"पर तुम्हें मैं सन्यासी नही कह सकता ! कहूँ कैसे, तुम संन्यासी हो ही नही। तुम्हारा आकार संन्यासियों के आकार से बिल्कुल नहीं मिलता। तू अपने जिन त्यागों की प्रशंसा करके संन्यासी के सिहासन पर बैठना चाहता है, केवल वे ही त्याग तो तुम्हें संन्यासी के ऊँचे आसन पर नहीं बिठा सकते। संन्यासी होने के लिए किन्हीं और ही वस्तुओं का त्याग करना चाहिए गृहपति !"

गृहपति चौक उठा। जैसे उसकी आत्मा को किन्हीं और

वस्तुओं का कुछ भान ही न रहा हो। उसने गौतम से विस्मय के स्वर में पूछा—"संन्यासी होने के लिए किन-किन चीजों का त्याग करना चाहिए गौतम!"

"सुनो गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया—"जब तुम्हारी सुनने की इच्छा है, तब सुनो। प्रत्येक संन्यासी को आठ वस्तुओं का परित्याग करना चाहिए। बिना इनके त्याग के, कोई संन्यासी, संन्यासी नहीं कहा जा सकता—(१) अहिंसा के लिए हिंसा का त्याग करना चाहिए। (२) प्रदत्त वस्तु लेने के लिए चोरी का त्याग करना चाहिए। (३) सत्य बोलने के लिए असत्य का त्याग करना चाहिए। (४) चुगली न करने के लिए चुगली का त्याग करना चाहिए। (५) निर्लोभ बनने के लिए लालच का त्याग करना चाहिए। (६) अनिन्दा के लिए निन्दा छोड़नी चाहिए। (७) प्रेम के लिए क्रोध का परित्याग करना चाहिए। (८) निरभिमानी बनने के लिए अभिमान का परित्याग करना चाहिए।"

गृहपति पोतलिय तो जैसे आश्चर्यचकित हो उठा। उसने गौतम के चरणों में श्रद्धापूर्वक गिरकर कहा—"सचमुच भगवन्! मैं संन्यासी नहीं हूँ। मुझसे भूल हुई, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए।"

गौतम ने उसके सिर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा और उसे अपने चरणों पर से उठाकर कहा—"चिन्ता न करो गृहपति! यदि सुबह का भूला मनुष्य शाम को घर पहुँच जाय, तो वह भूला हुआ नहीं कहा जा सकता।"

गौतम की इस दया से, यदि पोतलिय गहपति का हृदय आनन्द से गद्गद हो गया हो तो आश्चर्य क्या?

३६

केवट-पुत्र

वह एक बौद्ध भिक्षु था। उसका जन्म केवट जाति में हुआ था, इसलिए लोग उसे केवट-पुत्र के नाम से पुकारा करते थे। उसका स्वभाव अत्यन्त आग्रही और अभिमानी था। भिक्षुओं का संसर्ग और गौतम की शिक्षाओं से भी, उसके हृदय की मलिनता दूर न हुई। किसी ने सच ही कहा है, 'मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिले विरंचि सम।'

एक दिन केवट-पुत्र एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मन ही मन कुछ सोच रहा था। सहसा उसकी अभिमान-वृत्ति जाग उठी। वह सोचने लगा, मैं गौतम से किस बात में कम हूं। मैंने तो उनके सारे धर्म-सिद्धांतों को भली भाँति जान लिया है। फिर मैं उन्हें क्यों अपना आदर्श गुरु मानूं? क्यों उनके चरणों में मस्तक झुकाऊँ?

केवट-पुत्र अपने इन अभिमानी विचारों के कारण बावला-सा बन गया। उसके हृदय से विनम्रता तो जैसे काफूर-सी हो गई। वह जहां जाता, गौतम के खिलाफ अपनी शान बघारता। कहता, मैंने तो गौतम के सभी धर्म-सिद्धांतों को भली भाँति जान लिया है। फिर मुझमें और उनमें अन्तर ही क्या?

बौद्ध भिक्षुओं को भी, केवट-पुत्र के इस अभिमान की बात मालूम हुई। सब विस्मय में पड़ गए, सन्नाटे में आ गये। सोचने लगे, केवट-पुत्र का ऐसा दुस्साहस! उसने भगवान् गौतम की समानता में अपने को प्रमाणित किया! आश्चर्य है! बौद्ध भिक्षुओं ने उसे अपने पास बुलाया।

भिक्षुओं ने उसे समझाने की कोशिश की, उसे ठीक मार्ग पर

लाने का प्रयत्न किया, पर दुराग्रही केवट-पुत्र ! वह कब मानने लगा। उसने भिक्षुओं की बात पैरों से ठुकराकर कहा—"मैं सचमुच गौतम के सभी धर्म-सिद्धांतों को जानता हूँ। गौतम और मुझमें कोई भी अन्तर नहीं। मैं भी धार्मिक संसार में उनके ही समान दैवी पुरुष हूँ। मेरी भी लोगों को पूजा करनी चाहिए।

केवट-पुत्र का यह अभिमान ! उसका ऐसा अनर्गल प्रलाप भिक्षुओं ने दाँतों तले उँगली दबाई। सब एकसाथ मिलकर भगवान् गौतम के पास गये। गौतम उन दिनों अनाथपिंडक के जेतवन में निवास करते थे।

भिक्षु गौतम को अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। गौतम ने भिक्षुओं की ओर देखकर कहा—"कहिये, कुशल तो है ! आप लोग आज इतनी संख्या में कहाँ चले और आप लोगों के मुख पर आज उदासी की यह घटा छाई हुई है ?"

"सचमुच भगवान् ! आज हम लोग उदास हैं, खिन्न हैं," एक भिक्षु ने उत्तर दिया—"केवट-पुत्र को तो आप जानते ही होंगे। वह आजकल अधिक अभिमानी, अधिक दुराग्रही और अधिक प्रलापी बन गया है। वह लोगों से कहा करता है कि मैंने गौतम के सभी धर्म-सिद्धांतों को भली भाँति जान लिया है। अतएव अब लोगों को उनके ही समान मेरी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इतना ही नहीं। उसके द्वारा भिक्षु-संघ की मर्यादा को काफी क्षति भी पहुँच रही है भगवन् !"

भिक्षु की बात सुनकर गौतम कुछ देर तक मन ही मन न जानें क्या-क्या सोचते रहे ! कदाचित् उनके मन में भी केवट पुत्र के इस दुस्साहस पर आश्चर्य पैदा हुआ हो ! कुछ देर के बाद गौतम ने उस भिक्षु से कहा—"जाओ, केवट-पुत्र को मेरे पास बुला लाओ।"

भिक्षु ने केवट-पुत्र के पास जाकर गौतम का संदेश उसे सुना

दिया। गौतम का संदेश सुनकर जैसे उसकी आत्मा काँप-सी उठी—जैसे उसकी नस-नस में एक कम्पन-सा आ गया।

मगर उसकी अभिमानी वृत्ति! उसने उसे आदेश दिया, नहीं, चलो गौतम के पास। डरते हो क्यों, उनसे खुलकर वाद-विवाद करो। फैसला तो अपने आप हो जायेगा। बस फिर क्या? केवट-पुत्र गौतम के पास गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

गौतम ने पहले एक बार उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा, फिर उन्होंने उससे पूछा—"केवट-पुत्र, क्या तू सचमुच इस बात का प्रचार करता फिरता है कि मैंने गौतम के सभी धर्म-सिद्धांतों को भली भाँति जान लिया है।"

"हाँ गौतम!" केवट-पुत्र ने उत्तर दिया—"मैं सचमुच इस बात का प्रचार किया करता हूँ। मैंने अपनी समझ में सचमुच बौद्ध धर्म के सभी सिद्धांतों को भली भाँति जान लिया है।"

"जान लिया है!" गौतम ने उसकी ओर देखकर आश्चर्य से कहा। गौतम की इस आश्चर्ययुक्त वाणी से केवट-पुत्र कुछ सहमा, कुछ डरा।

गौतम ने उसे सोच-विचार में पड़ा हुआ देखकर उसके दिल की कमजोरी जान ली। उन्होंने एक-दूसरे भिक्षु को आदेश देते हुए कहा—"भिक्षु! तुम केवट-पुत्र से बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के सम्बन्ध में प्रश्न करो। यदि केवट-पुत्र तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर न दे सकें तो उसे भिक्षु-संघ की मर्यादा का उल्लंघन करने के अपराध में संघ से बाहर निकाल दो।"

संघ से बाहर निकालने की बात सुनकर केवट-पुत्र तो सन्नाटे में आ गया। भिक्षु अभी अपने स्थान से प्रश्न करने के लिए उठा भी नहीं कि केवट-पुत्र का मस्तक गौतम के चरणों में झुक गया।

उसने आँखों से हृदय का पानी टपकाते हुए कहा—"भगवन् ! क्षमा करो, मुझसे भूल हुई।"

गौतम को दया आ गई। उन्होंने जब केवट-पुत्र का सिर, अपने चरणों पर से ऊपर उठाया, तब उसके चरणों पर उसकी आँखों के दो बड़े-बड़े बूंद मोती की भाँति झलक रहे थे।

□□